लेखक

की रचनाएं

दद दिया है (पुरस्कृत)
प्राण गीत
आसावरी
बादर बरस गयो
दो गीत
नदी किनारे
मुक्तकी (सचित्र)

तथा

कविताओं से भी अधिक हृदयस्पर्शी पुस्तक

लिख-लिख भेजत पाती

1986



आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली लखनऊ

दर्द दिया है

नीरज



DARD DIYA HAI
by Gopal Das 'Neeraj'

प्रकाशक
आत्माराम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली 110006

शाखा
17, अशोक मार्ग, लखनऊ

संस्करण 1986

मूल्य पैंतीस रुपये

मुद्रक
चोपड़ा प्रिंटर्स, मोहन पार्क
नवीन शाहदरा दिल्ली 32

उस शाम को

जिस दिन

सूरज नही डूबा

दृष्टिकोण

जब लिखने के लिए लिखा जाता है तब जो कुछ लिखा जाता है उसका नाम है गद्य, पर जब लिखे बिना न रहा जाए और जो खुद लिख-लिख जाए उसका नाम है कविता। मेरे जीवन मे कविता लिखी नही गई, खुद 'लिख लिख' गई है, ऐसे ही जैसे पहाडो पर निर्झर और फूलो और ओस की कहानी लिख जाती है। जिस प्रकार 'जल-जलकर बुझ जाना' दीपक के जीवन की विवशता है उसी प्रकार 'गा गाकर चुप हो जाना' मेरे जीवन की मजबूरी है। मजबूरी यानी वह मेरे अस्तित्व की शर्त है, अनिवार्यता है, और इसीलिए मैं उसे नही, वह मुझे बाँधे हुए है। वह मुक्त है और मोक्ष भी, तभी तो न वह किसी वाद की अनुगामिनी है और न किसी सिद्धान्त की भामिनी। वह मुझ से ही नही दूसरो से भी कहती है—

तुम लिखो हर बात चाहे जिस तरह चाहो,
काव्य को पर वाद का कफन न बनने दो।

क्योकि वह यह मानती है—

आयु है जितनी समय की गीत की उतनी उमर है,
चाँदनी जब से हँसी है, रागिनी तब से मुखर है,
जिन्दगी गीता स्वयं है जान, लें गाना अगर हम,
हर सिसकती साँस लय है, हर छलकता अश्रु स्वर है।

उत्तर से दक्खिन, पूरब से पच्छिम और धरती से आकाश तक जो कुछ भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारी प्राण-सत्ता को प्रभावित करता है वह सब कुछ उसका विषय है— चाहे वह अंधकार हो या

प्रकाश, जन्म हो या मृत्यु सुख हो या दुःख, राग हो या विराग, धूप हो या छाँह, संघर्ष हो या शान्ति, चाहे वह किसी प्रवासी की सूनी साँझ हो अथवा किसी संयोगी की सुबह, चाहे वह तपती-जलती हुई किसी श्रमिक की दोपहर हो अथवा प्रणय-केलि मे रत किसी प्रेयसी की चाँदनी रात। जहाँ तक जीवन है, जहाँ तक मनुष्य है, जहाँ तक सृष्टि है, वहाँ तक उसकी गति है। उसके लिए कुछ भी त्याज्य नही है। अशिव को शिव, असुन्दर को सुन्दर और असत्य को वह सत्य बनाना चाहती है। यही उसके गाने का ध्येय है और यही उसके रोने का अर्थ है। उसने शब्दो का जो महल बनाया है उसमे दीवानेखास-जैसी कोई चीज नही है। वहा केवल दीवानेआम ही है और उसमे प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ण, बिना किसी संकोच के प्रवेश कर सकता है और आमने-सामने खडा होकर अपनी बात कह सकता है। उसके पास सबकी सुनने की सहिष्णुता है, क्योकि उसने यह माना है कि सत्य किसी एक की ही थाती नही और न ही उसका एक रास्ता है। वह फुटपाथ पर भूख से छटपटाते हुए एक भिखारी के पास भी मिल सकता है और वर्षों से अँधेरे मे पडे हुए एक खडहर मे भी, इसीलिए उसने गाया है—

इस द्वार क्यों न जाऊ,
उस द्वार क्यों न जाऊँ।
घर पा गया तुम्हारा,
मैं घर बदल-बदल कर।

मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बडा और कोई दूसरा सत्य ससार मे नही है और उसे पा लेने मे ही उसकी सार्थकता है। जो साहित्य मनुष्य के सुख दुःख का साझीदार नही, उससे मेरा

विरोध है। मैं अपनी कविता द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुँचना चाहता हूँ। वही मेरी यात्रा का आदि है, और वही अंत। रास्ते पर कही मेरी कविता भटक न जाए, इसलिए उसके हाथ मे मैंने प्रेम का एक दीपक दे दिया है। मानवीय सम्बन्धो मे मेरे विचार से प्रेम सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध है। वह एक ऐसी हृदय-साधना है जो निरन्तर हमारी विकृतियो का शमन करती हुई हमे मनुष्यता के निकट ले जाती है। *व्यक्ति के जीवन की मूल विकृति मैं अह को मानता हूँ, जो सामाजिक* रूप मे स्वार्थ का रूप धारण करता है। घृणा, द्वेष, दम्भ, वैमस्य, युद्ध सहार इन सबका कारण यही अह है। इसी से मुक्त होने मे मनुष्य की मुक्ति है। मेरी परिभाषा मे इसी अह के समर्पण का नाम प्रेम है और इसी अह के विसर्जन का नाम साहित्य है। जो प्रेम का इष्ट है वही साहित्य का लक्ष्य है, इसीलिए मेरे विचार से अपने अंतिम रूप में प्रेम-साधना के समान साहित्य-साधना भी हृदय-साधना ही है। कवि बनना है तो पहले महान् मनुष्य बनो—यह मेरे काव्य का शीर्ष वाक्य है।

तो प्रेम और विशेष रूप से मानव-प्रेम मेरी कविता का मूल स्वर है। 'आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ,' यह मेरी कमजोरी भी है और शक्ति भी है। कमजोरी इसलिए कि घृणा और द्वेष से भरे आज के ससार मे मानव-प्रेम के गीत गाना अपनी पराजय की कहानी ही कहना है, पर शक्ति इसलिए है कि मेरे इस मानव-प्रेम ने ही मेरे आसपास बनी हुई धर्म-कर्म, जाति-पाँति आदि की दीवारो को ढहा दिया है और वादो के भीषण झझावात में भी मुझे पथभ्रष्ट नही होने दिया है, जब मैं अपना सत्य खोजने निकला था—

पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण,
बाँह डाली कली ने गले मे चपल।
एक तसवीर तेरे लिए किन्तु मैं—
साफ दामन बचाकर गया हो निकल।

—प्राण-गीत

मेरे पास मनुष्य की तसवीर थी इसीलिए मैं रास्ते मे नही भटक सका। इसीलिए यह मेरी शक्ति है। पर इसे पूरी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप यह भी जान लें कि मुझे इसकी कितने रूपो मे अनुभूति हुई है। मैं यह मानता हूँ कि पेट की भूख के साथ-साथ मनुष्य मे एक और भी भूख है, जिसका नाम है सृजन की भूख। प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व जो स्वय को विश्व मे किसी-न-किसी रूप मे प्रतिबिम्बित करने के लिए विकल है उसका कारण यही है—

दीप को अपना बनाने को
पतगा जल रहा है,
बूद बनने को समुदर को
हिमालय गल रहा है।

यही सृष्टि की प्रजनन-प्रक्रिया है। इसे ही वासना कहा गया है। यही प्रत्येक कला और साहित्य की मूल प्रेरणा है। यही वासना भिन्न-भिन्न चेतना-स्तरो पर भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। मनुष्य मे पच-कोषो की सत्ता को मैं व्यक्ति की पच-चेतनाओ व रूप मे स्वीकार करता हू। निरतर विकासशील होने के कारण कवि के मानस मे व्याप्त सृजन की यह भूख सतत ऊर्ध्वगामी होती है जिसके फलस्वरूप उसे भिन्न भिन्न प्रकार की अनुभूति होती है। जब तक यह वासना अन्नमय कोष मे व्याप्त रही है, तब तक यह आकर्षण'

22-5-61

कहलाती है। इस स्तर पर मनुष्य मांसलता से आक्रान्त रहता है और इस समय उसके भीतर का पशु प्रबल होता है। वह पाना तो चाहता है किन्तु देना कुछ नही चाहता—यही पाशविक वृत्ति है और इसी का नाम स्वार्थ है। इस स्तर पर जो रचना की जाती है वह घोर यौन-तृष्णा से विकल होती है। मैंने जीवन मे इस प्रकार का केवल एक गीत लिखा है - आज तो मुझसे न शरमाओ तुम्हें मेरी कसम है। सयम के कारण जब यही वासना और ऊपर की ओर सक्रमण करती है तब प्राणकोष मे प्रवेश करती है। प्राणकोष मे पवन यानी आवागमन है। यही से 'प्रेम' का उदय होता है। इस स्तर पर मनुष्य मे प्राप्ति की कामना के साथ-साथ देने की भावना भी रहती है। यहां से स्वार्थ का परिहार आरम्भ होता है, पर स्वार्थ की चेतना सर्वथा मिट नही जाती। पशुत्व क्षीण होने लगता है और मनुष्यत्व प्रबल होने लगता है। पर पूर्णतया उसका विनाश नही हो पाता, इसीलिए प्रेम के साथ-साथ ईर्ष्या भी चलती रहती है। यही से काव्य मे दार्शनिकता का जन्म होता है। 'विभावरी' मे सगृहीत मेरी अधिकाश रचनाएँ इसी स्तर की हैं और कुछ 'प्राण-गीत' की भी। प्राणमय-कोष से जब यह मनोमय-कोष मे गमन करती है तब कवि मे 'भक्ति' की अनुभूति जागृत होती है। प्राप्ति की कामना यहाँ सो जाती है। कविता यहाँ पहुँचकर स्त्री बन जाती है, क्योंकि समर्पण स्त्री ही कर सकती है, पुरुष नही। भक्त कवियो तथा सूफियो ने जो 'राम की बहुरिया' बनकर अपने हृदय की वेदना व्यक्त की है उसका तथा भारतवर्ष मे सखी सम्प्रदाय के जन्म का कारण भी यही है। मेरी भी कुछ कविताएँ इसी स्तर की हैं। उदाहरणार्थ, यह गीत—

तुमसे लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई।
साँस-साँस बन गई सुमिरनी,
मृगछाला तन की तन धरिणी,
दया गगा, क्षमा वैतरिणी,
भेद न कुछ कर पाई,
कहाई बनी दवाई।

भक्ति की तन्मयता विरह वेदना मे ही है। विरह का कारण है द्वैत जिसका आरम्भ मनोमय कोष से ही होता है। इसीलिए प्रत्येक भक्त कवि ने मोक्ष पर धूल फेंकी है और अद्वैतवाद को नीरस ज्ञान के रूप मे तिरस्कृत किया है। मनोमय कोष के ऊपर विज्ञानमय कोष है। यहाँ से द्वैत की समाप्ति आरम्भ होती है। इस स्तर पर कवि मे सामाजिक चेतना और जन मगल की भावना जागृत होती है। यही से वास्तविक प्रगतिशील कविता का जन्म होता है (किन्तु आज की प्रगतिशील कविता इस श्रेणी मे नही आती क्योकि उसमें से अधिकांश अनुभूतिशून्य हैं और केवल सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए लिखी-सी जान पडती हैं। हाँ, प्रेमचन्द के उपन्यासो मे इसके अवश्य दर्शन होते हैं और कहीं-कहीं नाजिम हिकमत की कविताओ म भी इसकी झलक मिलती है)। मेरी अब युद्ध नहीं होगा' शीर्षक कविता इसी चेतना-स्तर की कविता है। यहाँ व्यक्ति न स्त्री-रूप मे सोचता है न पुरुष-रूप मे। वह विश्व का एक अंश बन जाता है। निम्नलिखित गीत मे इसी की ध्वनि है—

अँधियारा जिससे शरमाए
उजियारा जिसको ललचाए,

ऐसा दे दो दद मुझे तुम
मेरा गीत दिया बा जाए।

और सबसे ऊपर आनन्दमय कोष है। यहाँ अह का पूण विसर्जन है और प्रेम की यह अन्तिम परिणति है। यहाँ व्यक्ति की चेतना का विश्व-चेतना मे पूण तिरोभाव है। यही साहित्य का और प्रगतिवाद का अन्तिम सोपान है। गोस्वामीजी के 'रामचरितमानस' मे इसी चेतना-स्तर की झलक है।

इसी सम्बन्ध मे एक बात और कह दूं। मेरे विचार से अनुभूति का अथ है उष्णता (ताप यानी वेदना)। उष्णता (ताप) ही जीवन है। प्रेम की गहराई ताप की अधिकता या न्यूनता से ही नापी जाती है। काव्य मे जो मर्मस्पर्शिता होती है उसकी जन्मदात्री भी यही उष्णता या वेदना है। यदि वह नही है तो कविता उपदेश भले हो, कविता नही कही जा सकती। इसका एक सृजनात्मक पहलू यह है कि यह मनुष्य के हृदय को छूकर उसे सहिष्णु और विशाल बना देती है। सुख आदमी को कैसे सीमित करता है और दु ख उसे कैसे विस्तृत करता है इस बात को मैंने इस प्रकार कहा है—

मैंने तो चाहा बहुत कि अपने घर मे रहूं अकेला पर,
सुख ने दरवाजा बन्द किया, दुख ने दरवाजा खोल दिया।

मेरी कविताओ मे इसी वेदना (उष्णता) की सहज स्वीकृति है। कुछ लोगो के विचार से यह नैराश्य प्रसूत है, पर मेरे अपने अनुभव से यह अपनी काव्य-वस्तु के प्रति मेरी निश्छल एव एकान्तिक तन्मयता के कारण ही है। इसे आप यदि मेरी कविताओ से निकाल देंगे तो मेरी उमर आधी रह जाएगी। मैं ही क्या ससार मे जितने महान् कवि हुए हैं उनकी रचनाओ से यदि आप उनकी 'वेदना' को

बहिष्कृत कर दें तो फिर शायद आप ही उन्हे पढना पसन्द नही करेंगे।

कविता के आन्तरिक सगठन के विषय मे मेरा मत है कि यद्यपि श्रेष्ठ कविता मे हृदय और बुद्धि का सन्तुलन होता है, तथापि उनकी क्रियाएँ विपरीत होती हैं। बुद्धि का काय सोचना है और हृदय का व्यापार अनुभूति प्राप्त करना है। कविता मे दोनो की नियाएँ बदल जाती हे। हृदय सोचने लगता है और बुद्धि अनुभव करने लगती है। इसको इस तरह भी कह सकते हैं कि कविता मे बुद्धि सोचती तो है, पर हृदय के माध्यम से ही सोचती है। बाइबिल मे एक वाक्य है—In the beginning was word, and word was God—'आदि मे शब्द था और शब्द ईश्वर था।' शब्द का अर्थ है प्रतीक। प्रतीक का अर्थ है विचार और ईश्वर का अर्थ है सृष्टि यानी विचार सृष्टि है। कविता भी एक सृष्टि है, पर वहाँ विचार को नही केवल भाव को ही स्थान है (कविता सुनकर लोग कहते हैं आपका भाव बहुत सुन्दर है, आपका विचार सुन्दर है यह कोई नही कहता)। पर विचार ही वहाँ भाव बन जाता है। कैसे ? बाइबिल का ही एक दूसरा वाक्य है—All was water and a spirit was brooding over it—'सब ओर जल था और उस पर एक चेतना मनन कर रही थी।' 'मनन' शब्द 'ब्रूडिंग' के लिए आया है। 'ब्रूडिंग' का अथ सेना भी होता है। मुर्गी जब अपने अण्डे को सेती है तो उसके द्रव्य-तत्त्व मे प्राण सचार (ताप सचार) होता है। इसी प्रकार जब कवि किसी विचार पर मनन करता है, उसे सेता है यानी जब उसमे सम्पूण व्यक्तित्व को डुबो देता है, जैसे मुर्गी अपने तन मन प्राण पख सबके ताप को केंद्रित कर अण्डे के द्रव्य मे

संचरित कर देती है तब वह विचार सृष्टि यानी भाव बन जाता है। इसी बात को यदि यों कहें तो अधिक उपयुक्त होगा—"जब तक हम किसी विचार को आत्मसात् किए रहते हैं तब तक वह विचार विचार रहता है, किन्तु जब विचार हमें आत्मसात् कर लेता है यानी हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व—तन, मन, खून, मांस, मज्जा आदि में घुल-मिल जाता है तब भाव बन जाता है।" मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि जिन कविताओं को मैंने प्रतीक्षा करने के बाद लिखा है वे मेरी श्रेष्ठ रचनाएँ हुई हैं। कोई भी विचार एक बार मन में उठकर कभी मिट नहीं पाता। वह हमारी उपचेतना में चला जाता है और कुछ काल बाद एक तीव्र अनुभूति के रूप में हमारे कंठ से फूट पड़ता है। यह जो फूटना है वही सहज है और वही कविता है। गीत की रचना में हमें कविता से एक कदम और आगे बढ़ना पड़ता है। उसकी सृष्टि में बुद्धि पूर्णतया हृदय की शरण में जाकर सोचने का कार्य कंठ को सौंप देती है। ऐसा इसलिए होता है कि गीत का प्राण केवल एक अमूर्त भाव होता है जो स्वर-संकेत से व्यक्त होता है। जब तक रचना का आधार मूर्त होता है तभी तक बुद्धि साथ देती है, किन्तु जैसे ही विषय अमूर्त हुआ बुद्धि निरवलम्ब होकर हृदय के पास जाकर समर्पण कर देती है। कविता में हम हृदय से सोचते हैं और बुद्धि (विवेक) से अनुभूति प्राप्त करते हैं, किन्तु गीत में हृदय कंठ के द्वारा सोचने लगता है। इसलिए बिना गुनगुनाए हुए गीत नहीं लिखा जाता। यह क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है कि कभी-कभी ही रचना के क्षणों में इसका आभास होता है।

मेरी भाषा के प्रति लोगों को शिकायत रही है कि न तो वह हिंदी है और न उर्दू। उनकी यह शिकायत सही है और इसका कारण

यह है कि मेरे काव्य का जो विषय 'मानव प्रेम' है उसकी भाषा भी इन दोनो मे से कोई नही है। हृदय म प्रेम सहज ही अकुरित होता है और वह जीवन मे सहज ही हम प्राप्त होता है । जो सहज है उसके लिए सहज भाषा ही अपेक्षित है । असहज भाषा म यदि वह कहा जाएगा तो अनकहा ही रह जाएगा। प्रत्येक समाज की एक सहज भाषा होती है । मैं जिस समाज मे रहता हूँ उस समाज की सहज भाषा वही है जिसमे मैं कविता लिखता हूँ । जो विषय असहज हैं उनके लिए मैंने भी असहज भाषा का ही प्रयोग किया है, जैसे 'स्रष्टा', 'जीवन-गीत', अरविन्द की कविताओ के अनुवाद आदि । फिर मैं यह भी मानता हूँ कि प्रत्येक विषय की भाषा अलग होती है। चेतना के पचस्तरो के साथ-ही-साथ भाषा के भी- चिह्न सकेत, भाव, सूत्र और मत्र पाँच स्तर होते हैं—चिह्न (आकर्षण), सकेत (प्रेम), भाव (भक्ति), सूत्र (अक्षरूप), मत्र (आनन्द) । विषय के अनुरूप मैंने भी चित्रमयी, सगीतमयी, परुष, दार्शनिक, सहज, साकेतिक आदि भाषाओ का प्रयोग किया है। विस्तार-भय से मैं यहां उद्धरण नही दे रहा हूँ किन्तु यदि आप ध्यान से मेरी रचनाओ को पढेंगे तो आपको इन सबके उदाहरण उनमे मिल जाएँगे।

मैंने कविताओ की अपेक्षा गीत अधिक लिखे हैं और मेरे गीत लोकप्रिय भी हुए हैं—यह भी सत्य है। अधिकाश लोग उनकी लोकप्रियता का श्रेय मेरे कविता-पाठ के ढग को देते हैं । कुछ हद तक यह भी सत्य है, पर उनकी लोकप्रियता का सबसे बडा कारण है उनकी निर्झर-सी अबाध गति और स्वाभाविक भाषा मे गुँथी हुई स्वाभाविक अनुभूति । कविता की सबसे बडी शक्ति उसकी गति और स्वा भाविकता ही है। जब हम स्वाभाविकता से अस्वाभाविकता की

ओर जाते हैं तव गद्य रचना करते हैं और जब अस्वाभाविकता से स्वाभाविकता की ओर आते है तव कविता लिखते है। स्वाभाविकता ही गति है, जो व्यष्टि, समष्टि और सृष्टि सबकी स्थिति का एकमात्र कारण है। कविता भी एक सृष्टि है, इसलिए सृष्टि के समान गति (लय) उसकी भी आधारशिला है। वाक्य मे गति क्रिया के सहज एव उचित प्रयोग से ही आती है। सस्कृत साहित्य उत्तराधिकार मे पाने तथा स्वभाव से आध्यात्मिक चिन्तन मे लीन होने के कारण हिन्दी ने 'क्रिया' के महत्त्व को कभी ठीक तरह से नही समझा (ब्रजभाषा और अवधि के कवियो ने यह गलती नही की)। या तो उसने उसका वहिष्कार किया या उसका गलत प्रयोग किया। आधुनिक हिन्दी कविता मे क्रिया को स्थानच्युत और पदच्युत करने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते है। आरम्भ मे मैंने भी यही भूल की थी पर एक दिन अचानक ही एक चार वप के बच्चे ने मुझे मेरी भूल सुझाई और तब से मैं क्रिया के प्रयोग के विपय मे अधिक सजग रहने लगा। श्रेष्ठ कविता का एक गुण स्मरणीयता भी है और वह भी बहुत कुछ क्रिया के उचित या अनुचित प्रयोग पर ही निभर है। जिस वाक्य मे 'क्रिया' स्थान भ्रष्ट होगी वह वाक्य प्रयत्न करने पर भी स्मृति मे अधिक देर तक नही ठहर सकता और जिस वाक्य मे 'क्रिया' अपने निश्चित स्थान पर होगी वह वाक्य विना प्रयास हमारे स्मृति-पट पर अकित हो जायेगा। नीचे के दो उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जायेगा—

आज जी भर देख लो तुम चाद को,
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

o o o

एक तिनके ने किसी तूफान के—
साथ उड़कर जब लिया आकाश छू।

ऊपर दिए हुए दोनो उदाहरणो मे जो अन्तर है वह स्पष्ट है। पहले वाक्य मे क्रिया अपने यथास्थान पर है, इसलिए गति के साथ-साथ उसकी स्मरणीयता भी बढ जाती है। दूसरे स्थान मे 'छू लिया' को तोडकर उसे स्थानच्युत कर दिया गया है, इसलिए वाक्य की स्मरणीयता नही, उसकी गति भी क्षीण हो जाती है।

भाषा, अर्थ और सकेत की स्वाभाविकता मे शब्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अकेले शब्द का कोई अर्थ नही होता। शब्द का अर्थ वाक्य अर्थात् अन्य शब्दो के सम्बन्ध तथा समय और स्थान के सन्दर्भ से प्राप्त होता है। मैंने यह माना है कि जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण हैं और उसे पूर्णता देने वाला उसकी आत्मा का साथी इस ससार मे कही छुपा है, उसी प्रकार प्रत्येक शब्द भी अपूर्ण है और उसका भी एक पूरक शब्द है—जैसे सुबह का शाम, जमीन का आसमान, दिन का रात आदि-आदि। जिस ध्वनि-सामजस्य के फलस्वरूप एक शब्द का सम्बन्ध दूसरे से जुडता है वह शताब्दियो के प्रयोग और सस्कार के बाद प्राप्त होता है, क्योकि भाषा व्यक्ति की नही, समाज की सृष्टि है। कोश मे प्रत्येक शब्द के कुछ न-कुछ पर्यायवाची शब्द होते हैं, पर कविता के लिए वे नही बने हैं। कविता मे एक शब्द का स्थान उसी अर्थ का दूसरा शब्द नही ले सकता - यदि ले सकता है तो मेरी दृष्टि मे यह उस कविता की कमी है। कविता की स्वाभाविक भाषा वह होती है जिसमे प्रत्येक शब्द, दूसरे शब्द का पूरक बनकर उपस्थित हो जैसे निम्नलिखित चरण मे—

अनजान यह नगर है, अनजान यह डगर है।
न चढाव का पता है, न ढलाव की खबर है।
सब कह रहे मुसाफिर ! चलना सँभल-सँभलकर।
लम्बा बहुत सफर है, छोटी बहुत उमर है।

इस प्रकार की भाषा से जो सगीत उत्पन्न होता है वह स्वर-सगीत, शब्द-सगीत आदि से बढकर हृदय-सगीत होता है और यही सगीत भाव-सगीत के रूप मे गीत का इष्ट होता है। मेरे गीतो मे अन्त सलिला के समान यही सगीत व्याप्त है। चेतना के जिस स्तर पर 'भक्ति' का उदय होता है उसी स्तर पर इस सगीत का जन्म होता है। सूर, मीरा, महादेवी और कोकिलजी की इधर की रचनाओ मे यह व्याप्त है। बच्चनजी की भी कुछ रचनाओ मे हमे इसके दर्शन होते हैं।

यह रही मेरी बात। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, तथा अन्य वादो के रूप मे जो विवाद आज हिन्दी मे प्रचलित हैं उनमे मेरी आस्था नही है। यद्यपि मैं प्रगति को जीवन का इष्ट मानता हूँ और प्रयोग को प्रगति का सहायक, किन्तु न तो किसी वाद-विशेष से आक्रान्त प्रगति का मैं पोषक हूँ और न किसी सिद्धान्त विशेष से सम्बन्धित प्रयोग का हिमायती। जीवन के वाक्य पर विराम चिह्न नही रखा जा सकता, उसको बाँध देना उसकी गति को अवरुद्ध कर देना है। साहित्य जीवन का उपनाम है। मेरी दृष्टि मे वही साहित्य श्रेष्ठ है जो हमे हमारे व्यक्तित्व के सकुचित घेरे से निकालकर अधिक-से अधिक विश्व-मानवता के निकट ले जाता है। वास्तविक प्रयोग मेरे निकट वह है जो विचार प्रयोग के साथ-साथ भाषा, छन्द, लय, तान आदि के भी प्रयोग करता है। विचार-प्रयोग को छोडकर अन्य सभी प्रकार के

प्रयोग मेरे विचार से फैशन हैं और वे पेरिस की सडको पर ही प्रतिष्ठा पा सकते हैं, वृन्दावन या अयोध्या की गलियो मे नही । यहाँ तो सूर-मीरा की तन्मयता और तुलसी का जीवन दशन ही अपेक्षित है। और फिर ऐसा हृदय जो कह सके—

कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा ससार है।

—नीरज

क्रम

दर्द दिया है

1

दर्द दिया है, अश्रु स्नेह है, बाती बैरिन श्वास है,
जल जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है।

मैं ज्वाला का ज्योति-काव्य
चिनगारी जिसकी भाषा,
किसी निठुर की एक फूँक का
हूँ बस खेल तमाशा

पग-तल लेटी निशा, भाल पर
बैठी ऊषा गोरी,
एक जलन से बाँध रखी है
साँझ-सुबह की डोरी

सोये चाँद-सितारे, भू-नभ दिशि-दिशि स्वप्न-मगन है
पी-पीकर निज आग जग रही केवल मेरी प्यास है।
जल जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है।।

विश्व न हो पथ-भ्रष्ट इसलिये
तन - मन आग लगाई,
प्रेम न पकडे बाँह शलभ की
खुद ही चिता जलाई

रोम-रोम से यज्ञ रचाया
आहुति दी जीवन की,
फिर भी जब मैं बुझा
न कोई आख बरसने आई

किसे दिखाऊँ दहन-दाह, किस अचल मे सो जाऊँ
पास बहुत है पतझर मुझसे, दूर बहुत मधुमास है !
जल-जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है ! !

यह पतग का प्यार, किसी
के नयनो की यह छाया,
केवल तब तक है, जब तक
बस एक न झोका आया

बुझते ही यह लो, चुकते ही
यह सनेह, यह बाती
सृष्टि मुझे भूलेगी जैसे
तुमने मुझे भुलाया

बुझे दिये का मोल नही कुछ क्यो मिट्टी के घर मे ?
सोच-सोच रो रहा गगन, औ' धरती पड़ी उदास है !
जल-जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है ! !

सीनाजोरी हवा कर रही
है नाराफ अँधेरा,
इतना तो जल चुका मगर
है अब भी दूर सबेरा

तिल-तिल घुलती देह, रिस
रहा बूंद - बूंद जीवन-घट,
कुछ क्षण के ही लिए और है
अपना रैन - बसेरा

यद्यपि हूँ लाचार सभी विधि निठुर नियति के आगे
फिर भी दुनिया को सूरज दे जाने की अभिलाष है।
जल-जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है।।

मुझे लगा है शाप, न जब तक
रात प्रात बन जाये,
तब तक द्वार-द्वार मेरी लौ
दीपक - राग सुनाये

जब तक खुलती नहीं बाग की
पलकें फूलोंवाली
तब तक पात-पात पर मेरी
किरन सितार बजाये

आये-जाये साँस कि चाहे रोये-गाये पीडा
मैं जागूँगा जब तक आती धूप न सबके पास है।
जल-जलकर बुझ जाऊँ, मेरा बस इतना इतिहास है।।

मेरा गीत दिया बन जाये

१

अँधियारा जिससे शरमाये,
उजियारा जिसको ललचाये
ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये ।

इतने छलको अश्रु थके हर
राहगीर के चरण धो सकू,
इतना निधन करो कि हर
दरवाजे पर सवस्व खो सकू,

ऐसी पीर भरो प्राणो मे
नीद न आये जनम-जनम तक,
इतनी सुध - बुध हरो कि
सांवरिया खुद बाँसुरिया बन जाये ।

ऐसा दे दो दद मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये ।।

घटे न जब अँधियार, करे
तब जलकर मेरी चिता उजेला,
पहला शव मेरा हो जब
निकले मिटने वालो का मेला

पहले मेरा कफन पताका
बन फहरे जब क्रांति पुकारे,
पहले मेरा प्यार उठे जब
असमय मृत्यु प्रिया बन जाये।

ऐसा दे दो दद मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये।।

मुरझा पाये फसल न कोई
ऐसी खाद बने इस तन की,
किसी न घर दीपक बुझ पाये
ऐसी जलन जले इस मन की

भूखी सोये रात न कोई
प्यासी जागे सुबह न कोई,
स्वर बरसे, सावन आ जाये,
रक्त गिरे, गेहूँ उग आये।

ऐसा दे दो दद मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये।।

वहे पसीना जहाँ, वहाँ
हरयाने लगे नयी हरियाली,
गीत जहा गा आय, वहाँ
छा जाये सूरज की उजियाली

हँस दे मेरा प्यार जहाँ
मुसका दे मेरी मानव - ममता
चन्दन हर मिट्टी हो जाये
नन्दन हर बगिया बन जाये।

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये।।

उनकी लाठी वने लेखनी
जो डगमगा रहे राहो पर,
हृदय बने उनका सिंहासन
देश उठाये जो वाहो पर

श्रम के चरण चूम आयी
वह धूल करे मस्तक पर टीका,
काव्य बने वह कर्म, कल्पना—
से जो पूव क्रिया बन जाये।

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये।।

मुझे शाप लग जाय, न दौड़ू
जो असहाय पुकारों पर मैं,
आँखें ही बुझ जायँ, बेवसी
देखूं अगर बहारों पर मैं

टूटें मेरे हाथ न यदि यह
उठा सकें गिरने वाले को
मेरा गाना पाप अगर
मेरे होते मानव मर जाये!

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये।

मस्तक पर आकाश उठाये



मस्तक पर आकाश उठाये, धरती बाँधे पाँवो से।
तुम निकलो जिन गावो से, सूरज निकले उन गाँवो से।।

चन्दनवाली सास तुम्हारी, कुन्दनवाली काया है,
बादलवाली धूप उजाली, पीपलवाली छाया है,
सावन-नैना मधऋतु बैना, भादो-कुन्तल केशा तुम,
सुबह-दुपहरी शमा सुनहरी, सभी तुम्हारी माया है,
उजडी रातोवाला काजल, बिछुडे नयनोवाला जल
सुनो तुम्ही को बुला रहे सब उन अजनबी चिताओ से।
तुम निकलो जिन गावो से, सूरज निकले उन गावो से।।

पडें तुम्हारे पाव जहाँ, हो तीरथ वहाँ सबेरे का,
खुले तुम्हारा द्वार जिस समय, घूँघट खुले उजेरे का
छू लो तुम जो दीप सितारा बन जाये जग का प्यारा,
पूनम का दपन हो जाये काला देश अँधेरे का,
किरनो की करधनी पहन धरती सोलह सिंगार करे

तुम जब अपनी धूप उडाओ, उडती हुई हवाओ से।
तुम निकलो जिन गावो से, सूरज निकले उन गावो से।।

तुम जब दो आवाज़ पहाडो की बोली मिट्टी बोले,
तुम जब छेडो तान, चाँदनी घट-घट मे चन्दा घोले,
तुम जब हो नाराज़ ध्वस्त हो जाये रूढि, पुरातनता,
तुम जब हँस दो, प्राण! धरा के लिए स्वर्ग का मन डोले,
बजे तुम्हारी पायल जिस दम सूने मे, वीराने मे
हँसती हुई बहारें बरसें रोती हुई घटाओ से।
तुम निकलो जिन गाँवो से, सूरज निकले उन गाँवो से।।

तुम उनका शृगार करो जिनका पतझारो मे घर है,
तुम उनका जयकार बनो जिनका तलवारो पर सर है,
तुम उनको दो मुकुट धरा की धडकन हैं जिनकी साँसें,
तुम उन पर जलधार झरो, जिनका अगारो का स्वर है,
जिनका रक्त सिंदूर सुबह का, जिनका स्वेद सूर्य जग का
उनकी कीर्ति-पताका बन तुम फहरो सकल दिशाओ से।
तुम निकलो जिन गाँवो से, सूरज निकले उन गाँवो से।।

नयन तुम्हारे दीप बनें जब पूजा हो जग मे श्रम की,
शीश तुम्हारा सीढी हो नव जन-युग के जन-सगम की,
श्वास तुम्हारी कहे कहानी उन सब मिटनेवालो की,
जिनकी अर्थी देख न पायी सेज किसी भी शबनम की,
सबसे पहले रक्त तुम्हारा रवि के भाल करे टीका
जिस दिन सुख सवेरा बाहर निकले सद गुफाओ से।
तुम निकलो जिन गाँवो से, सूरज निकले उन गाँवो से।।

हज़ारो साझी मेरे प्यार मे

4

मैं उन सबका हूँ कि नही कोई जिनका ससार मे !
एक नही, दो नही, हज़ारो साझी मेरे प्यार मे !!

मेरा चुम्बन चाँद नही, सूरज का जलता भाल है,
आलिगन मे फूल न कोई, धरती का ककाल है,
वतमान के लिये विकल मैं, विरही नही अतीत का,
नव भविष्य का नव स्वर्णोदय सपना मेरे गीत का,
किसी एक टूटे स्वर से ही मुखर न मेरी श्वास है,
लाखो सिसक रहे गीतो का क्रन्दन-हाहाकार मे !
एक नही, दो नही, हज़ारो साझी मेरे प्यार मे !!

मैं गाता हूँ नही किसी की प्रीति चुराने के लिये,
मेरा यह तप है दुनिया का दुख पी जाने के लिये,

कल जिस राह चलेगा जग मैं उसका पहला प्रात हूँ
तुम्हे अँधेरे मे दिखता हूँ पर सूरज के साथ हूँ,
शब्दो के वस्त्रो मे तुम पहचान न पाओगे मुझे
मैं बैठा हूँ कफन लपेटे हर बागी तलवार मे।
एक नही, दो नही, हजारो साझी मेरे प्यार मे।।

जितने घर वीरान सभी वे मेरे तीरथ-धाम हैं,
बेघरबार दीप जो भी मेरे वनवासी राम हैं,
याद द्रौपदी के प्रण की है गुथे न अब तक केश जो
गोवर्धनधारी की स्मृति वे शीश उठाये देश जो,
मेरा भी गुलाब की कलियो को मन होता है मगर—
फूल खिलाने हैं मुझको हर आँधी, हर पतझार मे।
एक नही, दो नही, हजारो साझी मेरे प्यार मे।।

मैंने रात वहाँ काटी चाँदनी जहाँ सोती नही,
भोर किया उस जगह, जिस जगह कभी सुबह होती नही,
तपी वहाँ दोपहर जहाँ है भूख खडी मैदान मे,
साझ हुई उस देश, जिन्दगी जहाँ बुझी खलिहान मे,
या तो पार लगा दूगा मैं इस मौसम की नाव को
या फिर बेमौसम डूबूंगा खुद गहरी मँझधार मे।
एक नही, दो नही, हजारो साझी मेरे प्यार मे।।

जिनके साथी आँधी-अंधड, जिनकी राह पहाडिया
उन पर न्योछावर करता हूँ मैं अपनी फुलवारियाँ,

जिनके घर न दिया जलता, जिनसे प्रकाश नाराज है,
राज उन्हे सूरज पर करना मुझे सिखाना आज है,
तुम भी जाओ पानी का यह चीर बदल, आँजो नयन
अगारो की शादी होगी सावन के त्यौहार मे।
एक नही, दो नही, हज़ारो साझी मेरे प्यार मे।।

छ रुबाइयां

5

(1)

जहाँ भी जाता हूँ वीरान नजर आता है,
खून मे डूबा हर मैदान नज़र आता है,
कैसा है वक्त जो इस दिन के उजाले मे भी
नही इन्सान को इन्सान नज़र आता है।

(2)

चल रहे हैं जो उन्हें चलके डगर से देखो,
तैरनेवालो को तट से न, लहर से देखो
देखना ही है जो इसान मे भगवान तुम्ह
आदमी को ही आदमी की नज़र से देखो।

(3)

एक दिन मे ही अमृत सारा जहर बन जाये,
एक दिन मे ही स्वर्ग उजडा यह घर बन जाये,
देवता बनने-बनाने की कोशिशें जो छोड
सिर्फ इन्सान ही इन्सान अगर बन जाये।

(4)

आदमी ने वक्त को ललकारा है,
आदमी ने मौत को भी मारा है,
जीते हैं आदमी ने सारे लोक,
आदमी आदमी से हारा है।

(5)

आदमी फौलाद को पी सकता है,
आदमी चट्टान को सी सकता है,
यह तो सब ठीक मगर प्यार बिना
आदमी कहीं भी न जी सकता है।

(6)

जाये जिस ओर ज़माना तुम उसे जाने दो,
गा रहा हो जो वक्त गीत उसे गाने दो,
चाहते ही हो बनाना जो नया हिन्दोस्तान
देश की मिट्टी को उठने दो, मुसकराने दो।

6

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो,
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा।

सूनी है माँग निशा की चन्दा उगा नहीं
हर द्वार पड़ा खामोश सवेरा रूठ गया,
है गगन विकल, आ गया सितारों का पतझर
तम ऐसा है कि उजाले का दिल टूट गया,
तुम जाओ घर-घर दीपक बनकर मुसकाओ
मैं भाल-भाल पर कुंकुम बन लग जाऊँगा।

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो,
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा।।

कर रहा नृत्य विध्वंस, सृजन के थके चरण,
संस्कृति की इति हो रही, क्रुद्ध हैं दुर्वासा,
बिक रही द्रौपदी नग्न खड़ी चौराहे पर,
पढ़ रहा किन्तु साहित्य सितारों की भाषा,
तुम गाकर दीपक राग जगा दो मुर्दों को
मैं जीवित को जीने का अर्थ बताऊँगा।

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
मैं होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा।।

इस कदर बढ़ रही है बेबसी बहारों की
फूलों को मुसकाना तक मना हो गया है,
इस तरह हो रही है पशुता की पशु क्रीड़ा
लगता है दुनिया से इन्सान खो गया है,
तुम जाओ भटको को रास्ता बता आओ
मैं इतिहासों को नये सफे दे जाऊँगा।

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो,
मैं होलीबन कर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा।।

मैं देख रहा नन्दन सी चन्दन-बगिया में
रक्त के बीज फिर बोने की तैयारी है,
मैं देख रहा परिमल पराग की छाया में
उड़कर आ बैठी फिर कोई चिनगारी है,
पीने को यह सब आग बनो यदि तुम सावन
मैं तलवारों से मेघ-मल्हार गवाऊँगा।

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो,
मैं होली बनकर बिछुडे हृदय मिलाऊँगा ।।

जब खेल रही है सारी धरती लहरो से
तब कब तक अपना तट पर रहना सम्भव है ।
ससार जल रहा है जब दुख की ज्वाला मे
तब कैसे अपने सुख को सहना सम्भव है ।
मिटते मानव औ' मानवता की रक्षा मे
प्रिय। तुम भी मिट जाना, मैं भी मिट जाऊँगा ।

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
मैं होली बनकर बिछुडे हृदय मिलाऊँगा ।।

दुनिया के घावो पर

7

दुनिया के घावो पर मरहम जो न बनें
उन गीतो का शोर मचाना पाप है!

खड़े किनारे पर ही जो हँसते हुए
सुनते रहे पुकार डूबनेवालो की,
जिनकी वाणी बनकर कीर्ति नही गूंजी
तूफानो के गाल चूमनेवालो की,
ऐसे वैरागी - सन्यासी रागो का
द्वार-द्वार पर अलख जगाना पाप है!

दुनिया के घावो पर मरहम जो न बनें
उन गीतो का शोर मचाना पाप है!!

पानी के ही ठण्डे - ठण्डे दपण मे
रहे देखते जो जलते सूरज का तन

जिनके सर पर सेहरा बनकर नही सजा
सिया हुआ काँटो से लहू-लुहान कफन,
ऐसे सर्द गुलाबो की मुर्दा ऋतु मे
बुलबुल तेरा आना जाना पाप है।

दुनिया के घावो पर मरहम जो न बनें
उन गीतो का शोर मचाना पाप है।।

जिन्हे ज्ञात यह नही कि गीतो की सीता
अग्नि-परीक्षा देती है अगारो मे,
है जिनको मालूम नही साहित्य सदा
फूल खिलाता है मुर्दा पतझारो मे
स्याही के ऐसे शुभ-नाम कलको का
गगा-तट पर कुम्भ नहाना पाप है।

दुनिया के घावो पर मरहम जो न बनें
उन गीतो का शोर मचाना पाप है।।

आया है तूफान भयानक जब घर मे
बैठे सजा रहे जो रूप चित्रसारी,
लहरो ने जब मौन निमत्रण भेजा है
बाँध उन्हे बैठी तब एक कली क्वाँरी,
ऐसे मल्लाहो की किश्ती पर चढकर
मस्ती तेरा तट पा जाना पाप है।

दुनिया के घावो पर मरहम जो न बने
उन गीतो का शोर मचाना पाप है।।

कृति कवि की होती है पर कृति के पीछे
गाती है अपनी बनकर जग की पीडा,
रहता है चद्रमा नील नभ के घर मे
किन्तु चादनी करती है भू पर क्रीडा,
मठ मे बैठी जिसे न मठ की चिन्ता हो
उस मूरत को शीश झुकाना पाप है।

दुनिया के घावो पर मरहम जो न बनें
उन गीतो का शोर मचाना पाप है।।

तिमिर ढलेगा

8

मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा ।

यह जो रात चुरा बैठी है चाँद सितारो की तरुणाई,
बस तब तक कर ले मनमानी जब तक कोई किरन न आई
खुलते ही पलकें फूलो की, बजते ही भ्रमरो की वशी
छिन्न भिन्न होगी यह स्याही जैसे तेज धार से काई,
तम के पाँव नही होते वह चलता थाम ज्योति का अचल
मेरे प्यार निराश न हो, फिर फूल खिलेगा, सूर्य मिलेगा।
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा तिमिर ढलेगा।।

सिर्फ भूमिका है बहार की यह आंधी-पतझारो वाली,
किसी सुबह की ही मंजिल है रजनी बुझ सितारो वाली,
उजडे घर ये सूने आँगन, रोते नयन, सिसकते सावन,
केवल है वे बीज कि जिनसे उगती है गेहूँ की बाली,
मूक शान्ति खुद एक क्रान्ति है, मूक दृष्टि खुद एक सृष्टि है
मेरे सृजन हताश न हो, फिर दनुज थकेगा, मनुज चलेगा।
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा।।

व्यर्थ नही यह मिट्टी का तप, व्यर्थ नही बलिदान हमारा,
व्यथ नही ये गीले आचल, व्यर्थ नही यह आँसू-धारा,
है मेरा विश्वास अटल, तुम डाँड हटा दो, पाल गिरा दो,
वीच समुन्दर एक दिवस मिलने आयेगा स्वय किनारा,
मन की गति पग गति बन जाये तो फिर मजिल कौन कठिन है ?
मेरे लक्ष्य निराश न हो, फिर जग बदलेगा, मग बदलेगा।
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा।।

जीवन क्या ?—तम भरे नगर मे किसी रोशनी की पुकार है,
ध्वनि जिसकी इस पार और प्रतिध्वनि जिसकी दूसरे पार है,
सौ सौ बार मरण ने सीकर होठ इसे चाहा चुप करना
पर देखा हर बार बजाती यह बठी कोई सितार है,
स्वर मिटता है नही, सिफ उसकी आवाज बदल जाती है।
मेरे गीत उदास न हो, हर तार बजेगा, कठ खुलेगा।
मेरे देश उदास न हो, फिर दीप जलेगा, तिमिर ढलेगा।।

धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ

9

दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!

बहुत बार आयी-गई यह दिवाली
मगर तम जहाँ था वहीं पर खड़ा है,
बहुत बार लौ जल-बुझी पर अभी तक
कफ़न रात का हर चमन पर पड़ा है

न फिर सूर्य रूठे, न फिर स्वप्न टूटे
उषा को जगाओ, निशा को सुलाओ!
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!!

सृजन-शान्ति के वास्ते है जरूरी
कि हर द्वार पर रोशनी गीत गाये
तभी मुक्ति का यज्ञ यह पूर्ण होगा,
कि जब प्यार तलवार से जीत जाये,

घृणा बढ रही है, अमा चढ रही है
मनुज को जिलाओ, दनुज को मिटाओ।
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ।।

बडे वेगमय पख है रोशनी के
न वह बन्द रहती किसी के भवन मे,
किया कैद जिसने उसे शक्ति छल से
स्वय उड गया वह धुआँ बन पवन मे,
न मेरा-तुम्हारा, सभी का प्रहर यह
इसे भी बुलाओ, उसे भी बुलाओ।
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ।।

मगर चाहते तुम कि सारा उजाला
रहे दास बनकर सदा को तुम्हारा,
नही जानते फूस के गेह मे पर
बुलाता सुबह किस तरह से अँगारा,
न फिर अग्नि कोई रचे रास इससे
सभी रो रहे आँसुओ को हँसाओ।
दिये से मिटेगा न मन का अँधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ।।

10

(1)

जो पुण्य करता है वह देवता बन जाता है,
जो पाप करता है वह पशु बन जाता है,
किन्तु जो प्रेम करता है वह आदमी बन जाता है।

(2)

जब मैंने प्रेम किया तब मुझे लगा कि जीवन आकर्षण है,
जब मैंने भक्ति की तब मुझे आभास हुआ कि जीवन समर्पण है,
किन्तु जब मैंने सेवा व्रत लिया तब
मुझे पता चला कि जीवन सबसे पहले सर्जन है।

(3)

जब मैं बैठा था तब समझता था कि जीवन उपस्थिति है,
जब मैं खड़ा था तब कहता था कि जीवन स्थिति है,
किन्तु जब मैं चलने लगा तब गाने लगा, जीवन गति है।'

(4)

जब तक मैं पुकारता रहा तब तक समझता रहा कि जीवन तुम्हारी आवाज है। और जब मैं स्वयं को पुकारने लगा तो कहने लगा कि जीवन अपनी ही आवाज है।

किन्तु जिस दिन से मैंने संसार को पुकारना शुरू किया है उस दिन से मुझे लगने लगा है कि जीवन मेरी और तुम्हारी नहीं, उन सब की आवाज़ है जिनकी कि कोई आवाज़ ही नहीं है।

उद्जन बम्ब के परीक्षण पर

11

अब हो जाओ तैयार, साथियो ! देर न हो,
दुश्मन ने फिर बारूदी बिगुल बजाया है,
बेमौसम फिर इस नये चमन के फूलो पर
सर कफन बांधने वाला मौसम आया है !

फिर बनने वाला है जग मुरदो का पडाव
फिर बिकने वाला है लोहू बाजारो मे
करने वाली है मौत मरघटो का सिंगार
सोने वाली है फिर बहार पतझारो मे !

फिर सूरजमुखी सुबह के आनन की लाली
काली होने वाली है धूम-घटाओ से,
फिर नाजुक फूलो वाली धरती की थाली
भरने वाली है कब्रो-कफन - चिताओ से

जिनके माथे की बेंदी घर की हँसी-खुशी
जिनके कर की मेहदी दर की उजियाली है,
जिनके पग की पायन आँगन की चहल-पहल
जिनकी पीली चुनरी होली-दीवाली है,

अपनी उन शोभा, सीता, राधा, लक्ष्मी के
फिर झुके घूघटो के खुल जाने का डर है,
अपनी उन हिरिनी सी कन्याओ बहनो पर
खूखार भेडियो के चढ आने का डर है।

सारी थकान की दवा कि जिनकी किलकारी
सब चिताओ का हल जिनका चचलपन है,
सारी साधो का सुख जिनका तुतलाता मुख
सारे बधन की मुक्ति कि जिनकी चितवन है,

अपने आगन के उन शैतान चिरागो के
हाथो का दूध खिलौना छिननेवाला है,
अपने दरवाजे के उन सुदर फूलो से
दुश्मन भालो की माला बुननेवाला है।

जिन खेतो मे बैठा मुसकाता है भविष्य,
जिन खलिहानो मे लिखी जा रही युग-गीता,
जिस अमराई मे झूल रहा इतिहास नया
जिन बागो की हर ऋतुरानी है परिणीता,

उन सब पर एक वार फिर असमय-अनजाने
छानेवाली है स्याह-नकाबी खामोशी,
उन सब पर एक वार फिर भरी दुपहरी मे
आनेवाली है जहर-बुझाई वेहोशी।

वे पनघट जिनकी पाव-फिसलनी सीढी पर
छलकी जाने कितने नयनो की रस-गगरी,
वे कुंज-कदम्ब कि जिनकी ठण्डी छाया मे
लुट गई न जाने किस-किसके मन की नगरी।

वह 'ताज' कि जिसकी पूनोवाली रातो मे
जागे चुम्बन जाने कितनी मुमताजो के,
वह यमुना-तट जिसकी लहरो मे बँधे हुए
आलिगन जाने कितने शोख-तकाजो के।

वे चौपालें, चौपालो के जलते अलाव
अब तक कहानियाँ जहाँ पडी 'बत्तीसी' की,
चुटकुले वीरबल के, खुसरो की पहेलिया
है अब तक जिनकी हँसी जहाँ पर हँसती-सी,

वे चरागाह जिनकी हरियाली-मखमल पर
अपने कितने वैलो की घण्टी हिली डुली,
वे बँबुरी-वन जिनके काँटो की नोको से
जाने कितने घावो को राहत-राह मिली,

लेकिन अब उन पर चाँद नही मुसकायेगा
अब नही सजेगी वहाँ सितारो की चोली,
कूकते जहाँ कायल न कभी थक पाती थी
गूँजेगी सिफ वहाँ अब खून भरी गोली !

वे याद मदरसे होगे, जिनके टाटो पर
जाने कितने टैगोर बैठकर पढ आये,
भूली तो होगी नही पाठशालायें वे
उपनिषद न जिनकी याद 'कौमुदी' कर पाये !

वह शान मगर होगा अब घूरे की ढेरी,
वे छप्पर, वे खपरैलें धुआँ उडायेंगी,
टैगोर - गोर्की - तुलसी की वे कविताएँ
पथ पर दो-दो दानो को कर फैलायेंगी !

हाँ, वह अपना छोटा सा तुलसी का बिरवा
जिस पर घर की हर चूडी अर्घ्य चढाती है,
वह सैयद का आला जिस जगह कि हर मुश्किल
दो चार बताशो मे बस हल हो जाती है,

वे मन्दिर - मस्जिद, गिरजेघर, वे देवालय
जो युग-युग की विश्वास-भावना के प्रतीक
इञ्जील, कुरान, बाइबिल, गीता रामायण
जो लिए जा रहे सस्कृति का रथ लीक-लीक

उन सब पर बुरी निगाह आज है दुश्मन की
उन सब पर आग बिछाने का उसका मन है,
रह जाए मानवता का नाम न शेष कहीं
ऐसा सैलाब बुलाने का उसका मन है!

वह जो पहाड़ पर खड़ा आँधियों को थामे
वह जो समुन्दरों को बाँहों में झुला रहा,
वह जो विधवा चट्टानों की भर रहा माँग,
वह जो रेगिस्तानों को पानी पिला रहा,

वह जो जवानियों पर उबाल बनकर छाया,
वह जो शिशु के हाथों का दही-बताशा है,
जल रहा द्वार की दीवट पर जो बन चिराग
जो जग के सब इतिहासों की परिभाषा है,

घर रही अजन्ता पूजा जिसकी छेनी की
यह ताजमहल जिसके हाथों का दर्पण है,
यह कुतुब लाट जिसकी उँगली की करामात,
यह पिरामिडों का घर जिसका तन-रजकण है,

वह जो सितार का तार, बहारों की बहार,
वह जो कलियों-फूलों का जादू-टोना है,
वह जो बगिया का बौर, कौर सबके मुँह का,
वह जो रातों में चाँदी, दिन में सोना है,

वह जो बचपन का बचपन, यौवन का यौवन,
वह जो सिंदूर-सगीत, गीत है पायल का,
वह जो चुनरी का रग, उमगो का उभार,
वह जो नयनो की लाज, स्वप्न है काजल का !

वह जो मुसकरा रहा गेहूँ की बालो मे,
वह जो उड रहा धुआँ बनकर चिमनीघर से,
वह जो सी रहा नदी की जलवाली साडी
वह छीन रहा जो मोती लहरो के कर से !

वह जिसके पैरो की परछाई है जमीन,
वह जिसका चौडा सा माथा है वह अकास
वह जिसकी दसो उँगलिया दसो दिशाएँ हैं,
वह जिसका हँसना सृजन, क्रुद्ध होना विनाश,

मुसकानोवाला चन्दा जिसका कठहार,
लपटोवाला सूरज जिसका सिंहासन है,
बूदोवाला बादल जिसका तन नीर-चीर,
अक्षय फूलोवाला जिसका घर-आँगन है,

उस श्रम को, उस मानव के पुण्य पसीने को
दानव ने लेकर बम्ब हाथ ललकारा है,
सदियो की सस्कृति पर, सदियो के गौरव पर
लाशें बटोरनेवाला हाथ पसारा है !

लेकिन घबराने की है बात, नही, साथी।
एशिया धधकते हुए पहाडो का घर है,
है सर्द चीन के हाथ उधर दौज का चाद
इस ओर हिमालय की मुट्ठी मे दिनकर है।

धुंधलाए फिर न कभी रोशनी चिरागो की
मुरझाए फिर न कभी मिट्टी की शहजादी,
कजलाए फिर न कभी नथ नागासाकी की,
कुम्हलाए फिर न कभी हिरोशिमा की वादी,

फिर हवा कराहे नही घाव नासूरो से
फिर महामारी-क्षण, खून न चूसें गलियो का,
फिर फूलो की फसलो मे फैले नही जहर
फिर पथ पर जाकर बिके न कुकुम कलियो का,

यह हँसते खेत रहे, मुसकाते बाग रहे
यह तानें रहे झूलती मेघ मल्हारो की,
यह सुबह रचाए रहे महावर इसी तरह,
यह रात सजे यूं ही बारात सितारो की,

ऐसे ही घट छलके, ऐसे ही रस ढुलके,
ऐसे ही तन डोले, ऐसे ही मन डोले,
ऐसे ही चितवन हो, ऐसी ही चितचोरी
ऐसे ही भंवरा भ्रमे रगीो घूघट वाले,

ऐसे ही ढोलक बजे, मँजीरे झकारें,
ऐसे ही हँसें झुनझुने, बाजें पैंजनियाँ,
ऐसे ही झुमके झूमें, चूमे गाल बाल,
ऐसे ही हों सोहरें लोरियाँ रसँचितियाँ,

ऐसे ही बदली छाए, कजली अकुलाए,
ऐसे ही बिरहा-बोल सुनाए साँवरिया,
ऐसे ही होली जले, दिवाली मुसकाए,
ऐसे ही खिले फले-हरियाए हर बगिया,

ऐसे ही चूल्हे जलें, राख यह रहे गरम,
ऐसे ही भोग लगाते रहें महावीरा,
ऐसे ही उबले दाल, बटोई उफनाए,
ऐसे ही चक्की पर गाए घर की मीरा,

इसलिए शपथ है तुम्हे तुम्हारे ही सर की
जिस रोज़ एशिया पर कोई बादल छाए,
वह शीश तुम्हारा ही हो जो सबसे पहले
दुश्मन के हाथों की रफ्तार मोड आए !!

12

सहार-सृजन के वज्र - अक्षरो मे अक्षर
जब लिखी गई थी नही कथा जड-चेतन की
तब मैं ही था रच रहा एक नवसृष्टि यहाँ
चिर-चिर अभिनव, चिर-चिर विराट् अपनेपन की।

ससार न था जब, तब मैं था ससार स्वय
जब था न पवन, तव मैं था एक अनन्त श्वास,
जब नही जले थे अम्बर मे रवि शशि-उडुगन
तब एक दीप बन मैं ही था जग का प्रकाश।

जब आदि न था, तब अन्त बना मैं व्याप्त रहा,
कामना न जन्मी थी तब मैं था पूर्णकाम,
जब नही हुआ था भू-नभ का परिचय-परिणय
तब मैं ही था सम्पूर्ण सृष्टि का दृष्टि-धाम।

जब धर्म न था, धृति में धरती का प्राण रहा,
जब कर्म न था, तब मैं था कृति का महोल्लास,
जब भक्ति न उतरी थी श्रद्धा के आँगन में
अपने ही विरह मिलन का था मैं रुदन-हास !

अश्रान्त उषा, आक्लान्त निशा, दिग्भ्रान्त दिशा,
ऋत, मरुत, सलिल पावक, क्षिति शून्य अनन्त-अन्त
थे घूम रहे जिसकी आरती बने-से सब
मैं ही था ज्वालाम्बरी इन्दु वह ज्योतिवन्त !

पल विपल, निमिष-क्षण, दिवस-मास, अब्दाब्द कल्प
बिखरे थे जो कालोदधि पर मुक्तादल-से,
मैंने ही गूथे थे निशि-दिन की माला में
अपनी पलकों के मीलन-उन्मीलन छल से !

तम की हिमवती गुहा में जो चेतना सती
सोयी थी सुप्त शिखा-सी चिर निष्कामव्रती
जागी थी जिस दिन मेरे मन के मन्मथ ने
रजवर्णी रति के रँग से श्वास रँगी रति की !

ध्वनि-वसना, स्वर-कर्णा, लय-वर्णा, गति-चरणा,
जो शून्य - समाधि लगाये बैठी थीं वाणी
कवि-कविता, काव्य-छन्द गीतों में गूँज उठी
जिस दिन मुझसे बोला मेरे दृग का पानी !

सौन्दर्य-सत्य, आकृति-अभाव मे जो अकृत्य—
बन स्वप्न कही बैठे थे निद्रा के द्वारे
मैंने ही मिट्टी को देकर आकार-सार
ला जन्म-मरण के वसन दिये उनको न्यारे !

कुन्तला-ज्योति-घन-कला-किरन-वाला चपला
जो सोयी थी जड अक पूर्ण निष्पन्द शान्त
मैंने ही नयनाकर्षण-शर से बेध उसे
दे दिया कल्पना का निवास-गृह विरह-प्रान्त !

रवि-शशि के दीप जला दृग के वातायन से
निशि-दिन जिसका पथ तकती थी वय की राधा
मैं ही था उसका आदि पुरुष वह मनमोहन
वशी की लय ध्वनि मे जिसने त्रिभुवन बाधा !

पतझर के पीत-वसन धारण कर ऋतुम्भरा
जिसके वियोग मे बनी योगिनी थी सदेह,
कलि-कुसुम-छन्द, मधु-गिरा-गन्ध, आनन्द-कन्द
मैं ही था उसका ऋतुपति मनभावन विदेह !

मीमाओ की सीमा, असीम की असीमता
लघु की लघुता, गुरु की गुरुता, तृण सहस्रार
मुझमे ही व्याप्त रहे थे सब ऐसे जैसे
रजकण मे गिरि को धारण करने का विचार !

पर सृष्टि-प्रसारण हित ही मैंने अनमाँगे
दे दिये मृत्तिका को जो अपने अश्रु-प्राण,
अब मुझे मिटाने का ही वह छल करती है
मेरे मन से अपने तन का कर तुलादान !

दो रुबाइयां

13

(1)

एक चीज है जो अभी खोके अभी खोनी है,
एक बात है जो अभी होके अभी होनी है,
जिन्दगी नींद है जो जागकर आने वाली
जो अभी सोके अभी सोई अभी सोनी है।

(2)

रात इधर ढलती तो दिन उधर निकलता है,
कोई यहाँ रुकता तो कोई वहाँ चलता है,
दीप औ' पतंगे में फर्क सिर्फ इतना है
एक जलके बुझता है, एक बुझके जलता है।

आज जी भर देख लो तुम चाँद को

14

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए ।

दे रहे लौ स्वप्न भीगी आख मे
तैरती हो ज्यो दिवाली धार पर,
होठ पर कुछ गीत की लडियाँ पडी
हँस पडे जैसे सुबह पतझार पर,

पर न यह मौसम रहेगा देर तक
हर घडी मेरा बुलावा आ रहा,
कुछ नही अचरज अगर कल ही यहाँ
विश्व मेरी धूल तक पाए न पाए

आज जी भर देख लो तुम चाद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए ।

ठीक क्या किस वक्त उठ जाए कदम
काफिला कर कूँच दे इस ग्राम से
कौन जाने कब मिटाने को थका
जा सुबह माँगे उजाला शाम से,
काल के अद्वैत अधरो पर धरी
ज़िन्दगी यह बाँसुरी है चाम की
क्या पता कल श्वास के स्वरकार को
साज यह, आवाज यह भाए न भाए ।

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए ।

यह सितारो से जडा नीलम नगर
बस तमाशा है सुबह की धूप का,
यह बडा-सा मुसकराता चन्द्रमा
एक दाना है समय के सूप का,
है नही आज़ाद कोई भी यहाँ
पाँव मे हर एक के जंजीर है
जन्म से ही जो पराई है मगर
साँस का क्या ठीक कब गाए न गाए

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए ।

स्वप्न-नयना इस कुमारी नीद का
कौन जाने कल सवेरा हो न हो,
इस दिये की गोद मे इस ज्योति का
इस तरह फिर से बसेरा हो न हो।
चल रही है पाँव के नीचे धरा
और सर पर घूमता आकाश है
धूल तो सन्यासिनी है सष्टि से
क्या पता वह कल कुटी छाए न छाए।

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

हाट मे तन की पडा मन का रतन
कब बिके किस दाम पर अज्ञात है,
किस सितारे की नजर किसको लगे
ज्ञात दुनिया मे किसे यह बात, है।
है अनिश्चित हर दिवस, हर एक क्षण
सिर्फ निश्चित है अनिश्चितता यहाँ
इसलिए सम्भव बहुत है, प्राण। कल
चाँद आए, चाँदनी लाए न लाए।

आज जी भर देख लो तुम चाँद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए।

15

विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लू, किसे भूल जाऊँ ?

विरहिणी थकी नींद तो चाहती है
अभी और कुछ देर ठहरे अँधेरा,
मगर ज्वाल-जोगी दिए की लगन है
कि हो आज पहले सुबह से सबेरा,

इसी द्वन्द्व मे मैं पडा सोचता हूँ
कि सूरज जगाऊँ कि चन्दा बुलाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लू, किसे भूल जाऊँ ?

सिसक साँस कहती यही रोज़ मुझसे
कि मिट्टी मिटाए मुझे जा रही है,
मगर देखता हूँ उधर बाग मे तो
कली धूल मे खिल रही, गा रही है,

दुरगे नगर की दुरगी डगर पर
कहाँ बैठ रोऊँ, कहाँ बैठ गाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ ?

जनम से मरण की शिकायत यही है
"कि जीवन नही मानता हुक्म मेरा,"
कफन ने सदा ही कहा किंतु रोकर
"कि है मौत से बस न मेरा न तेरा,"

सृजन-नाश के दो क्षणो से बँधा मैं
जनम पर हँसूं या मरण पर रिझाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद कर लूँ किसे भूल जाऊँ ?

बसा मृत्तिका-पुतलियो मे सपन जो
छुआ धूप ने तो किरण बन गया वह
लिया चूम जो चाँद ने भूल से तो
गिरा आँख से ओस कन बन गया वह,

तुम्ही फिर कहो स्वप्न के द्वार पर मैं
अँगारे बिछाऊँ कि तारे टँकाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ ?

सुबह धूप का रूप घूंघट सजाए
जहाँ देखता था लगा फूल मेला,
वही शाम अब ओढ चादर धुएँ की
पडा रो रहा एक पतझर अकेला,
'सुबह-शाम बन ढल रही जिन्दगी को'
कि रोकर सुलाऊँ, कि हँसकर जगाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है
किसे याद कर लू, किसे भूल जाऊँ ?

उषा जो सुबह हाथ मेहदी रचाती
उसे पोछ देता सदा सान्ध्य-तारा,
लगाती निशा भाल जो चन्द्र-टीका
उसे चाट जाता दिवस का अँगारा,
इसी भाँति मैं भी स्वय मिट रहा जब
किसे फिर बनाऊँ, किसे फिर मिटाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ ?

किसी एक तूफान वाली लहर ने
दिया था मुझे फेंक कल इस किनारे,
लहर पर वही अब बिना कुछ बताए
लिए जा रही है मुझे उस किनारे,

समय-सिन्धु मे एक तृण हूँ, पता क्या
कहाँ डूब जाऊँ, कहाँ पार पाऊँ ?
विरह रो रहा है, मिलन गा रहा है,
किसे याद कर लूँ, किसे भूल जाऊँ ?

उसकी अनगिन बूंदो मे स्वांती बूंद कौन ?

16

उसकी अनगिन बूदो मे स्वांती बूंद कौन ?
यह बात स्वय बादल को भी मालूम नही ।

किस एक साँस से गाँठ जुडी है जीवन की ?
हर जीवित से ज्यादा यह प्रश्न पुराना है,
कौन-सी जलन जलकर सूरज बन जाती है
बुझकर भी दीपक ने यह भेद न जाना है,

परिचय करना तो है बस मिट्टी का सुभाव
चेतना रही है सदा अपरिचित ही बनकर,
इसलिए हुआ है अकसर ही ऐसा जग मे
जब चला गया मेहमान, गया पहचाना है,

खिल खिलकर, हँस-हँसकर, झर-झरकर काँटो मे
उपवन का ऋण तो भर देता हर फूल मगर
मन की पीडा कैसे खुशबू बन जाती है
यह बात स्वय पाटल को भी मालूम नही !

उसकी अनगिन बूदो मे स्वाती बूद कौन ?
यह बात स्वय बादल को भी मालूम नही !

किस क्षण अधरो पर कौन गीत उग आएगा
खुद नही जानती गायक की स्वरवती श्वास,
कब घट के निकट स्वय पनघट उठ आएगा
यह मम बताने मे है चिर असमर्थ प्यास,
जो जाना—वह सीमा है सिर्फ जानने की
सत्य तो अजाने ही आता है जीवन मे
उस क्षण भी कोई बैठा पास दिखाता है
जब होता अपना मन भी अपने नही पास।

जिस उँगली ने उठकर अजन यह आजा है
उसका तो पता बता सकते कुछ नयन, किन्तु
किस आँसू से पुतली उजली हो जाती है
यह बात स्वय काजल को भी मालूम नही !

उसकी अनगिन बूदो की स्वाती बूद कौन ?
यह बात स्वय बादल को भी मालूम नही !

क्यो सूरज जल जलकर दिन-भर तप करता है ?
जब पूछा सध्या से वह चाँद बुला लाई,
क्यो ऊषा हँसती है निशि के लुट जाने पर
जब एक कली से कहा खिली वह मुसकाई,
हर एक प्रश्न का उत्तर है दूसरा प्रश्न
उत्तर तो सिर्फ निरुत्तर ही है इस जग मे
जब-जब रोई है लाश गोद मे मरघट की
तब-तब है बजी कही पर कोई शहनाई,

हर एक रुदन के साथ जुडा है एक गान
यह सत्य जानता है हर एक सितार, मगर
किस घुघरू से कितना सगीत छलकता है
यह बात स्वय पायल को भी मालूम नही !

उसकी अनगिन बूँदो मे स्वाँती बूद कौन ?
यह बात स्वय बादल को भी मालूम नही !

उस रोज राह पर मिला एक टूटा दपण
जिसमे मुख देखा था हर चाद-सितारे ने,
काजल-कघी, सेंदुर बिन्दी से बार-बार
सिगार किया था हँस-हँस साँझ-सकारे ने,
लेकिन टुकडे-टुकडे होकर भी वह मैंने
देखा सूरज से अपनी नजर मिलाए था,
जैसे सागर पर हाथ बढाया हो मानो
बुझते-बुझते भी किसी एक अगारे ने

मैंने पूछा इतना जर्जर जीवन लेकर
कैसे कंकर-पत्थर की चोटें सहता तू ?
वह बोला, "किस चोट से चोट मिट जाती है ?
यह बात स्वयं घायल को भी मालूम नहीं।"

उसकी अनगिन बूंदों में स्वाती बूंद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं।

17

मैंने तो चाहा बहुत कि अपने घर में रहूँ अकेला, पर—
सुख ने दरवाज़ा बन्द किया, दुख ने दरवाजा खोल दिया।

मन पर तन की साँकल देकर
सोता था प्राणों का पाहुन,
पैताने पाँव दबाते थे
बैठे चिर जागृत जन्म-मरण,
सिरहाने साँसों का पखा
झलती थी खडी-आयु चचल,
द्वारे पर पहरेदार बने
थे घूम रहे रवि, शशि, उडुगन,

फिर भी चितवन का एक चोर फेंक ही गया ऐसा जादू
अधरों ने मना किया लेकिन आँखों ने मोती रोल दिया।
सुख ने दरवाज़ा बन्द किया, दुख ने दरवाजा खोल दिया।

जीवन पाने को शलभो ने
जा रोज़ मरण से किया प्यार,
चन्दा के होठ चूमने को
दिन ने चूमे दिन-भर अगार
निज देह गलाकर जव वादल
हो गया स्वय अस्तित्वहीन,
था सवी तभी धरती के घर
सावन भादो वाली फुहार,

दुनिया दुकान वह जहाँ खडे होने पर भी है दाम लगा
हर एक विरह ने रो-रोकर, हर एक मिलन का मोल दिया।
सुख ने दरवाजा वन्द किया, दुख ने दरवाज़ा खोल दिया।

जव खाली थे यह हाथ,
हाथ था इनमे हर कठिनाई का,
जव सादा था यह वस्त्र
ज्ञान था मुझे न छूत-छुआई का,
लेकिन जव से यह पीताम्बर
मैंने ओढा रेशम वाला
डर लगता है मुझको अचल
छूने मे धूप-जुन्हाई का

वस वस्त्र वदलते ही मैंने यह कैसा परिवतन देखा
जिस रस को दुख ने अमत किया, उसमे सुख ने विप घोल दिया।
सुख ने दरवाजा वन्द किया, दुख ने दरवाज़ा खोल दिया।

चाँदनी टूट जब बनी ओस
ले गई उसे चुन धूप कहीं,
सध्या ने दिये जलाये तो
तम भी रह सका कुरूप नहीं,
फूलो की धूल मले शरीर
जब पतझर बगिया से निकला,
तब मिला द्वार पर खड़ा हुआ
उसको वसन्त अपरूप वही,

हर एक नाश के मरघट मे निर्माण जलाये है दीपक
जब जब आँगन खामोश हुआ, तब-तब उठ बचपन बोल दिया।
सुख ने दरवाजा बन्द किया, दुख ने दरवाज़ा खोल दिया।

एक विचार

•

18

फूल के साथ काँटे इसलिए हैं कि दुनिया
सौन्दर्य को देखे तो पर छू न सके,
प्रकाश के साथ ताप इसलिए है कि
दुनिया उसे पाये तो पर रख न सके,
इसी प्रकार कवि के गीत मे वेदना
इसलिए है कि दुनिया उसे गाये तो पर भूल न सके।

दो दवाइयाँ

चिर विरहिणी

20

बज चुकी हजारो बार मिलन की शहनाई
कर चुकी कोटि शृङ्गार धूल वाली काया,
लेकिन यह एक विरहिणी है मेरे घर मे
आज तक न जिसका परदेसी प्रियतम आया !

सदिया सोईं, खोईं इतिहासो की स्याही
हो गए मूक सौ सौ कवि तुलसी-सूरदास,
पर अक्षयरूपा ऐसी राजकुमारी यह
अब तक जिसको पी से मिलने की लगी आस !

लाखो सध्याओ का सुहाग-सिन्दूर झरा
लाखो रातो के हार सितारे टूट गए,
लेकिन इस गीली पलको वाली गोपी के
जब-जब पोछे आसू भर आए नए नए !

अनगिन वसन्त आँगन मे खिले, झरे, रोए,
अनगिन बचपन ले चाँद खेल आये द्वारे,
अनगिन जन्मो की थकन चरण दाबते थकी
पर सोए अब तक नयन न इसके निंदियारे।

जाने किस मन-मोहन की मुरली सुन छिन-छिन
बैठी रहती यह नयनो के यमुना तट पर,
जाने किस नट-नागर की सुधि-गागर थामे
जब देखो—प्यासी खडी हुई हैं पनघट पर।

होते ही साँझ सिसकने लगती साँसो मे
शशि की खिडकी पर बैठी रात बिताती है,
भोर के साथ ही गीले फूलो मे छिपकर
हर एक हवा से पाती कही पठाती है।

जो बोल बोल देती बन जाता महाकाव्य
सुन लेत जो ध्वनियाँ, हो जाती हैं श्रुतियाँ,
जो आँसू पोछ छिटक देती हैं त्रिभुवन मे
वे नभ मे तारे, भू पर कहलाते कलियाँ।

यह चिर वियोगिनी कौन कहाँ से आई है?
किस छली श्याम की यह मतवाली मीरा है?
यह मिट्टी की माया, या छलना श्वासो की?
या मेरी ही आत्मा यह मिलन-अधीरा है।

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !

•

21

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के !
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर !

बाँसुरी से बिछुड जो गया स्वर उसे
भर लिया कंठ मे शून्य आकाश ने,
डाल विधवा हुई जो कि पतझार मे
माँग उसकी भरी मुग्ध मधुमास नें,

हो गया कूल नाराज़ जिस नाव से
पा गई प्यार वह एक मँझधार का
बुझ गया जो दिया भोर मे दीन-सा
बन गया रात सम्राट् अँधियार का,

जो सुबह रंक था, शाम राजा हुआ
जो लुटा आज कल फिर बसा भी वही
एक मैं ही कि जिसके चरण से धरा
रोज तिल-तिल धसकती रही उम्र भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

प्यार इतना किया जिन्दगी में कि जड़—
मौन तक मरघटों का मुखर कर दिया,
रूप-सौन्दर्य इतना लुटाया कि हर
भिक्षु के हाथ पर चन्द्रमा धर दिया,

भक्ति-अनुरक्ति ऐसी मिली, सृष्टि की—
शक्ल हर एक मेरी तरह हो गई,
जिस जगह आंख मूदी निशा आ गई
जिस जगह आँख खोली सुबह हो गई,

किन्तु इस राग-अनुराग की राह पर
वह न जाने रतन कौन-सा खो गया?
खोजती-सी जिसे दूर मुझसे स्वय
आयु मेरी खिसकती रही उम्र भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!!

वेश भाए न जाने तुझे कौन-सा ?
इसलिए रोज़ कपड़े बदलता रहा,
किस जगह कब कहाँ हाथ तू थाम ले
इसलिए रोज गिरता सँभलता रहा,

कौन-सी मोह ले तान तेरा हृदय
इसलिए गीत गाया सभी राग का,
छेड़ दी रागिनी आँसुओं की कभी
शख फूँका कभी शान्ति का, आग का,

किस तरह खेल क्या खेलता तू मिले
खेल खेले इसी से सभी विश्व के
कब न जाने करे याद तू इसलिए
याद कोई कसकती रही उम्र भर।

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के।
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर।।

रोज़ ही रात आई गई, रोज़ ही
आँख झपकी मगर नींद आई नहीं,
रोज ही हर सुबह, रोज ही हर कली
खिल गई तो मगर मुसकराई नहीं,

नित्य ही रास ब्रज में रचा चाँद ने
पर न बाजी बँसुरिया कभी श्याम की
हर तरह उर-अयोध्या बसाई गई
याद भूली न लेकिन किसी राम की

हर जगह जिन्दगी मे लगी कुछ कमी
हर हँसी आँसुओ मे नहाई मिली,
हर समय, हर घडी, भूमि से स्वर्ग तक
आग कोई दहकती रही उम्र भर!

एक तेरे विना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!!

खोजता ही फिरा पर अभी तक मुझे
मिल सका कुछ न तेरा ठिकाना कही,
शान से वात की तो कहा बुद्धि ने—
'सत्य है वह मगर आजमाना नही,'

धम के पास पहुँचा पता यह चला
मन्दिरो-मस्जिदो मे अभी बन्द है,
जोगियो ने जताया कि जप-जोग है,
भोगियो ने सुना भोग-आनन्द है,

किन्तु पूछा गया नाम जव प्रेम से
धूल से वह लिपट फूटकर रो पडा,
वस तभी से व्यथा देख ससार की
आँख मेरी छलकती रही उम्र-भर!

एक तेरे विना प्राण ओ प्राण के!
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

सावन के त्योहार में

तूने मुझको ऐसे लूटा है इस भरे बाजार मे
चुनरी तक का रग उड गया सावन के त्योहार मे।

मैं तो आई थी खरीदने हीरक-बेंदी भाल की,
कच्ची चूडी किन्तु पिन्हाटी तूने सोलह साल की,
दाम लिया कुछ नही छलो। पर छल मुझसे ऐसा किया
गाठ टटोली तो देखा है पूजी लुटी त्रिकाल की,
उन नयनो की चितवन जाने बिन बोले क्या कह गई
डूबी मेरी नीद सदा को मेरी ही दृग-धार मे।

चुनरी तक का रग उड गया सावन के त्योहार मे।

अब तो निशि दिन नयन खडे रहते तेरे ही द्वार पर
उठ-उठ पांव दौड जाते हैं किसी नदी के पार पर
हो इतनी बदनाम गई इस चोरी-चोरी प्रीति मे,
गली-गली हँसती है मेरे काजल पर, शृङ्गार पर,
बहुत चाहती लोग न जाने मेरे-तेरे नेह को
तेरा ही पर नाम अधर जपते हर-एक पुकार मे।

चुनरी तक का रग उड गया सावन के त्योहार मे।

आये लाखो लोग व्याहने मेरी क्वारी पीर को,
पर कोई तसवीर न भाई घायल हृदय अधीर को,
बात चली जब-जब विवाह की सिसका आसू आँख का,
रात-रात भर रही कोसता नयनी श्वास-समीर को,
कैसे किसके गले डाल दू माला अपने हाथ से
मैं तो अपनी नही, धरोहर हूँ तेरी ससार मे।

चुनरी तक का रग उड गया सावन के त्योहार मे।

सौ-सौ बार द्वार आई मधुऋतु ले हँसी पराग की
एक न दिन भी पर मुसकाई ऋतु मेरे अनुराग की,
लाखो बार घटा ने बदली बिजली वाली कचुकी
दमकी मेरे माथ न अब तक टिकुली किन्तु सुहाग की,
कैसे काटूं रात अकेली, कैसे झेलू दाह यह।
बारी प्रीति सयानी होने वाली है दिन चार मे।

चुनरी तक का रग उड गया सावन के त्योहार मे।

पकी निबौरी, हरे हो गये पीले पत्ते आम के,
लिये बादलो ने हाथो मे हाथ झुलसती घाम के,
भरे सरोवर-कूप, लग गई नदियाँ सागर के गले,
खिले बाग के फूल, मिले आ पथिक सुबह वे शाम के,
कैसे तुझसे मिलू मगर मैं जनम जनम के मीत ओ!
चुन रक्खा है मुझे साँस ने मिट्टी की दीवार मे!

चुनरी तक का रग उड गया सावन के त्योहार मे!

वृज मे श्याम बसे राधा का,
गोकुल मे गोपी का ग्वाला,
मेरे पी का पता न कोई
कहाँ बिछाऊँ मैं मृगछाला,
किससे पूछूं किसे बुलाऊँ
किस किस डगर भभूत रमाऊँ

उसे समर्पित हू न जिसे यह ज्ञात समर्पण क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नही मन क्या होता है ?

मथुरा ढूढी, काशी ढूढी,
ढूंढ फिरी जीवन-जग सारा,
उस छलिया का गेह न पाया
सास-सास ने जिसे पुकारा,
छिल-छिल छाले गये पाँव के
तार-तार हो गई चुनरिया,

उस छवि पर हूँ मुग्ध न जिसको ज्ञात कि दर्पण क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नही मन क्या होता है ?

भूख भुलाई, प्यास भुलाई
हँसी खो गई, खुशी खो गई,
निद्रा रूठी, जागत छूटी
सुबह शाम एक-सी हो गई,
भोग न भाया, जोग न भाया
पूजन-जप कुछ नही सुहाया,

उसकी हूँ प्रेयसी न जिसको ज्ञात प्रदर्शन क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नही मन क्या होता है ?

सावन गरजा, भादो बरसा,
दामिनि देख गगन बौराया,
मेरे मन की बगिया मे पर
एक न दिन झूला पड पाया,
कौन पीर मेरी पहचाने
कौन दरद-दुख मेरा जाने

उसने होली खेली जिसको ज्ञात न फागुन क्या होता है ?
उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नही मन क्या होता है ?

24

आज गगन मे सावन घनघर
घिर घिर आई याद तुम्हारी !

जरा पुरा था घाव कि छूकर
हरा कर गई फिर पुरवाई
झपका ही था दर्द कि सहसा
बादल ने आवाज लगाई

तनिक चुप था हिया कि आकर
निठुर पपीहा पिया कह उठा
कुछ सूखी थी सेज कि नभ ने
बूदो की बाँसुरी बजाई

सिसकी साँस, आँख बरसी
तरसी पुतली, बँध गई हिचकियाँ
किस-किस तरह न जाने मेरे
घर अकुलाई याद तुम्हारी !

खटका कही किवाड, धडकने लगी
विकल रह-रह कर छाती,
गूँजो कही मल्हार, बुझ गई
काँप-काँप दीपक की बाती,

बिखरी कोई बूँद, बिखर झर
गई गुथे सपनो की माला—
भटकी कोई गध, हरहरा
उठी नयन-नदिया बरसाती,

छूटा धीरज-डाड, बह गई
अनजाने सागर मे नैया,
जाने कहाँ-कहाँ जा कर
डूबी-उतराई याद तुम्हारी !

सपन हवन हो गए कटी जब
नही किसी विधि रात उदासी,
अश्रु यती बन गए थमी जब
नही बरसती पुतली प्यासी,

घर धर पर्वत दिए वक्ष पर
जब-जब हृदय अधीर कराहा—
भग-भर लिए अँगार न सोई
किसी तरह जब बाँह बिसासी,

कभी अश्रु ने, कभी जलन ने,
कभी नयन ने, कभी तपन ने,
तुम्हें पता क्या तुम बिन किस-
किस ने बहनाई याद तुम्हारी !

आया बचपन याद समय के
सजे खिलौने चूर हो गए,
एक न दो सारे-के-सारे
खेल खिलाडी दूर हो गए,

वर्तमान के घर आ कर
उतरी कोई डोली अतीत की—
जितने क्षण थे शेष उमर के
जाने को मजबूर हो गए,

कही जनम बन, कही मरण बन,
कही धूप बन, कही छाँव बन,
जाने कितनी बार यहा
भूली-भरमाई याद तुम्हारी !

रूठ गई फिर नीद, गईं तुम
बोल कोयली वन फिर वन मे,
तपन बढी तन की जुगनू बन
चमक गईं तुम फिर जीवन मे

फिर दामिनि दमकी, तुमने फिर
चितवन से कर ली चितचोरी,
फिर से छाई घटा, तुम्हारे
कुन्तल फिर छा गए नयन मे,

नैन तुम्हारे, बैन तुम्हारे—
केश तुम्हारे, वेश तुम्हारे—
सबको लाई साथ तुम्ही को
सिर्फ न लाई याद तुम्हारी

आ गगन मे सावन बनकर
फिर घिर आई याद तुम्हारी !!

चाह मजिल की सिर्फ

25

चाह मजिल की सिर्फ उसके इरादो से न तौल,
नद की गहराई को बस उसके निनादो से न तौल
और गर तुझको परख करनी पडे कविता की
कस उसे दिल पै जरा वादो-विवादो से न तौल !

पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये।

26

पपिहरा उठा पुकार पिया नही आये !

कुज-कुज झूम उठे, बजी भृग शहनाई,
पात-पात थिरक उठे, डार-डार बौराई,
गुथे कोटि-कोटि हार पिया नही आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नही आये ! !

घर आई पुरवाई, अकुलाई सेज सेज,
शरमाई बादल को पत्र धरा भेज-भेज,
उत्तर पर दूर पार पिया नही आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नही आये ! !

रेशम के रस-हिंडोल गली-गली झूले,
मेघन के गीत फूल कठ कठ फूले,
गूजी दिशि-दिशि मल्हार पिया नही आये !
पपिहरा उठा पुकार पिया नही आये ! !

घुमड घुमड गरजे घन, उमड-उमड आये मन,
सिसक सिसक उठे श्वास, बरस-बरस पड़े नयन
भीग गए द्वार-द्वार पिया नहीं आये।
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये।।

बिखर गई स्वप्न-माल झरी अश्रु लड़ी-लड़ी,
खिड़की पर रात-रात बूंद जगी घड़ी-घड़ी,
घड़ी-घड़ी इंतजार पिया नहीं आये।
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये।।

गगन बना कृष्ण और प्रकृति बनी राधा
यमुना-तट रास रचा मौन द्वैत-बाधा,
मेरा सूना सिंगार पिया नहीं आये।
पपिहरा उठा पुकार पिया नहीं आये।।

27

जिसने देखा तुम्हे तुम्हारी ही फिर वह तसवीर बन गया ।

जनम-जनम से तुम्हे खोजता था मैं ओ मेरे अभिमानी !
आज तुम्हे जाना तो मुझको मेरी शक्ल लगी अनजानी
पर इससे भी बढकर अचरज हुआ कि जब पूजन-वेला मे
भक्ति तुम्हारी मूर्ति बन गई मन्दिर मर्त्य शरीर बन गया ।

जिसने देखा तुम्हे तुम्हारी ही फिर वह तसवीर बन गया ।

तुम्हे छू लिया था सूरज ने वह देखो अब तक जलता है,
झाँकी भर देखी थी शशि ने वह अब तक आँसू ढलता है,
बादल को था गर्व बहुत वह धो ही लेगा चरण तुम्हारे
हाथ बढाते ही पर उसका सारा जीवन नीर बन गया ।

जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तसवीर बन गया।

तुम्हे चूमने गया शलभ तो करना पडा भस्म उसको तन
रूप देख आया सो खुद हो गया अरूप रूप का दर्पण
की ही थी आरती अग्नि ने बुझना पडा धूम्र बन उसको
तुम्हे खोजते घर-घर खुद ही बेघर बार समीर बन गया।

जिसने देखा तुम्हे तुम्हारी ही फिर वह तसवीर बन गया।

तुमने किसे बुलाया जो मरघट से लौट पडा जग सारा
कौन तिराई तरी कि खुद ही मिलने को चल पडा किनारा
क्रीडा की वह कौन सृष्टि के आगन मे उस दिन जो छिन मे
पद रज भर कर धरा बन गई, अम्बर उडकर चीर बन गया।

जिसने देखा तुम्हे तुम्हारी ही फिर वह तसवीर बन गया।

28

तुमसे लगन लगाई
उमर भर नींद न आई।

सांस-सांस बन गई सुमिरनी,
मृगछाला सब-की-सब धरिणी,
क्या गंगा, कैसी वैतरणी,
भेद न कुछ कर पाई,
दहाई बनी इकाई।
तुमसे लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई।।

दर्द बिछौना, देह अटारी,
रोम-रोम आरती उतारी,
पलक भिगोई, अलक सँवारी
पर चाँदनी न छाई,
अमावस ऐसी आई।
तुमसे लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई।।

साथी छोड़े, सगी छोड़े,
जनम जनम के बन्धन तोड़े,
बदनामी से रिश्ते जोड़े,
तब तुझ तक आ पाई,
न कर अब तो निठुराई।
तुझसे लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई।।

जिस दिन तेरी याद न आई।

29

सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।

जिस दिन पड़पे प्राण न उस दिन
देह लगी मिट्टी की ढेरी,
जिस दिन सिसकी साँस न उस दिन,
उम्र हो गई कुछ कम मेरी,
बरसी जिस दिन आँख न, उस दिन
गीत न बोले, अधर न डोले,
हँसी बिकाई, खुशी बिकाई, जिस दिन तेरी याद न आई।
सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।।

धुंधलाया सूरज का दर्पण,
कजराई चन्दा की बेंदी,
मूक हुई दुपहर की पायल,
रूठ गई सध्या की मेहदी,
दिवस-रात सब लगे पराए,
लुटे-लुटाए स्वप्न-सितारे,
छटा न छाई, घटा न छाई, जिस दिन तेरी याद न आई ।।
सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई ।।

फिरते रहे नयन बौराये
कभी भवन मे, कभी भुवन मे,
रही कसकती पीडा कोई,
इस क्षण तन मे, उस क्षण मन मे
जग-जगकर काजल अलसाया,
चल-चलकर अचल थक आया,
हाट न पाई, बाट न पाई, जिस दिन तेरी याद न आई।
सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।।

गुमसुम बैठी रही देहरी,
ठिठका-ठिठका आँगन द्वारा,
सेज लगी काँटो की साडी
और अटारी कज्जल-कारा,
अगरु गध हिम-लहर हो गई,
चन्दन-लेप ताप तक्षक का,

धूप न भाई, छाँह न भाई, जिस दिन तेरी याद न आई।
सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।।

गली गली ने आँखें फेरी,
गाँव-गाँव ने पत्थर मारे,
फूल फूल ने धूल उडाई
शूल-शूल ने घाव उघारे,
गई जहाँ भी सास, गई-
ठुकराई हर घर से, हर दर से।

दुनिया ने दुश्मनी निभाई, जिस दिन तेरी याद न आई।
सुबह न आई, शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।।

30

तब तुम आए !

निरख निरख कर राह रात दिन,
काल पवन के पल छिन गिन-गिन,
युग-युग से दर्शन के प्यासे जब नयना पथराए !
तब तुम आए !!

कैसे पूजा करे तुम्हारी
मेरा व्याकुल विरह-पुजारी,
मन्दिर के पट खुले फूल जब थाली के मुरझाए !
तब तुम आए !!

बहुत हो चुका तव पद वन्दन,
अब तुम करो हमारा पूजन,
जिससे मेरी मूर्ति तुम्हारी ही मूरत बन जाये !
तब तुम आए !!

31

प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो !

प्राण को तो प्राण ही बस जानता है
हृदय को केवल हृदय पहचानता है,
तुम विरह का दाह चुम्बन से न पूछो !
प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो ! !

आसुओ की बूंद कब घन ने चुनी है,
भूमि की आवाज़ नभ मे अनसुनी है,
तुम धरा की प्यास सावन से न पूछो !
प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो ! !

रूप-छवि तो आँख का छल छन्द भ्रम है,
यह परस यह दरस आकर्षण चरम है,
भक्त की तुम भक्ति दर्शन से न पूछो !
प्राण ! मन की बात तुम तन से न पूछो ! !

रजकणो मे सिर्फ है प्रतिबिम्ब झलमल
चाँद नभ मे, घटो मे नीर केवल
तुम पिया का रूप दर्पण से न पूछो!
प्राण! मन की बात तुम मन से न पूछो!!

32

तू उठा तो उठ गई सारी सभा
सिर्फ मन्दिर थरथराता रह गया !

स्वप्न की डोली उठा आँसू चले
धूल फूलों की जवानी हो गई,
शाम की स्याही बनी दिन की ख़ुशी
देह की मीनार पानी हो गई,
तू गया क्या—हाय, बेमौसम यहाँ
एक बादल डबडबाता रह गया !

तू उठा तो उठ गई सारी सभा,
सिर्फ मन्दिर थरथराता रह गया !

हाथ जब थामे खडा था पास तू
पाँव पर मेरे झुका ससार था,
हर नज़र मेरे लिए बेचैन थी
हर कुसुम मेरे गले का हार था,
तू नही, तो कुछ खिलौने के लिए
एक बचपन छटपटाता रह गया।

तू उठा तो उठ गई सारी सभा,
सिर्फ मन्दिर थरथराता रह गया।

प्यार दुनिया ने बहुत मुझको किया,
पर लगन तुझसे लगी टूटी नही,
लाल-हीरे भी बहुत पहने मगर
मूर्ति तेरी हाथ से छूटी नही
क्या कहूँ ? हर आइने को किसलिए
शक्ल मैं तेरी दिखाता रह गया।

तू उठा तो उठ गई सारी सभा,
सिर्फ मन्दिर थरथराता रह गया।

कल विदा जो ले गया था घाट से
खिल गया है वह कमल फिर ताल मे
नीम से कल जो निवौरी थी छुटी
है लगी वह झूलने फिर डाल मे
एक मैं ही जो यहाँ तुझसे विछुड
रोज़ आता, रोज़ जाता रह गया !

तू उठा तो उठ गई सारी सभा,
सिर्फ मन्दिर थरथराता रह गया !

ओ बादर कारे !

33

ओ बादर कारे !

घुमड घुमड पल-पल छिन छिन मे,
बरसो मत मेरे आँगन मे,
सावन आज बने खुद मेरे नयना मतवारे !
ओ बादर कारे !

सुन-सुन गरज-गुहार तुम्हारी,
कँप-कँप उठती सेज-अटारी,
चौंक-चौक पडते हैं सुधि के सपने निंदियारे !
ओ बादर कारे !

वैसे ही काली निशि मेरी,
घोल रहे तुम और अधेरी,
डर है डूब न जायँ सदा को नभ के सब तारे !
ओ बादर कारे !

जा कनेहां-कहां का जल भर,
तृण-तृण पर झरते तुम झर-झर
आज तनिक उनकी पलकों पर—
जाकर बरसा दो मेरे भी दो आंसू खारे !
ओ बादर कारे !

देख जिन्हें शायद उन्मन बन,
क्षणभर यह सोचे उनका मन,
इसी तरह गल-ढलकर निशि-दिन—
उन बिन कोई प्राण देह बस बूंदों की धारें !
ओ बादर कारे !

जा में दो न समाएँ

२४

अर्धरात्रि,
अम्बर स्तब्ध शात,
धरा मौन   सन्नाटा

थप   थप   थप,
"द्वार पर कौन है ?"
"मैं हूँ तुम्हारा एक याचक,"
"किसलिए आए हो ?"
"एक दृष्टि, दान हेतु,"
"नही, नही, जाओ, लौट जाओ, यहाँ दान नही मिलता है,"
"भिक्षु और दाता के बीच जो परदा है,
जिस दम वह जलता है,
तभी द्वार खुलता है,"
    और द्वार बन्द रहा

35

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खडा ससार !

मैं तो सुनता था कि सभी से तेरी अलग डगर है,
लेकिन जाना आज कि तेरा चौराहे पर घर है,
बात न थी यह ज्ञात कि मठ मे मूरत भर है तेरी
और स्वय तू भरी भीड मे खेल रहा बाहर है,
तू क्या है कुछ समझ न पाया, केवल इतना देखा
माला तो थी एक, पहनने वाले किन्तु हज़ार !
इसी सोच मे बिखर झर गया साँसोवाला हार !

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहा, मिल गया खडा ससार !

दर्पण तो था एक, देखने वाले कोटि नयन थे,
एक ज्योति से ही ज्योतित सब धरती के आँगन थे,
एक श्वास पर लिये गोद में लाखो जन्म खडी थी
एक बूँद से प्यास बुझाने आये भी सावन थे,
किसे झुकाऊँ शीश कि जब तक मैं कुछ सोच-विचारूँ
मेरा हीं घर रूप हो गई प्रतिमाएँ साकार
पहचाना खुद को तब जब नयनो से झरी फुहार।

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खडा ससार।

कहता था ससार मर्त्य का कर न तुझे छू पाता,
मुझे लगाने गले मगर तू दौडा भुजा बढाता,
बोला था जड ज्ञान वायु की भी तुझ तक न पहुँच है,
दिखा मुझे तू किन्तु धूल मे हँसता-रोता-गाता,
तू मिट्टी है या मिट्टी की क्रीडा करने वाला—
जब तक यह जानूँ, मिट्टी ने मुझको लिया पुकार
इसीलिए तो मैं धरती पर अम्बर रहा उतार।

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार,
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खडा ससार।

चिन्तन आया था मेरे ढिग तुझको मुझे दिखाने
लेकिन जितने रूप दिखे सब ये अनबूझ-अजाने,
लिया भोग ने जोग पता देने को मुझको तेरा
किन्तु स्वय ही भूल गया वह अपने ठौर-ठिकाने,

छिपा कहाँ तू जव तक खोजूँ मैं इस वडे नगर मे
तव तक मेरे कान पड गया जग का हाहाकार।
और तभी से लगा वाँटने मैं दुनिया मे प्यार।
कोई आये कोई जाये है सबका सत्कार।

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार
तू ही मिला न मुझे वहाँ, मिल गया खडा ससार।

36

आज मेरे कठ मे गायन नही है ।

डालकर जादू मधुर कोई नयन का
छीनकर सब ले गया उल्लास मन का,
वेदना का है घिरा ऐसा घना तम
बुझ गया पहले समय से दीप दिन का
याद की ऐसी लहर पर बह रहा हूँ
कूल का भी आज आकषण नही है ।
आज मेरे कठ मे गायन नही है ।

खो गये सुधि-स्वर किसी के गीत वन मे
जा छिपे लोचन किसी के रूप-घन मे
खोजता फिरता बसेरा पथ भूला
कल्पना पछी किसी के नभ-नयन मे
आज अपनी ही पकड से मैं परे हूँ
आज अपने पास अपनापन नही है ।
आज मेरे कठ मे गायन नही है ।

मृत्यु जैसी मूकता की ओढ चादर
रात की सारी उदासी प्राण मे भर
आँज आँखो मे तिमिर की कालिमा सब
देखता लेटा पडा मैं शून्य अम्बर
नाचते हैं पुतलियो पर अश्रु प्रतिपल
किन्तु पलको मे पुलक कम्पन नही है
आज मेरे कठ मे गायन नही है !

तीव्र इतनी प्यास प्राणो मे जगी है
हर सितारे की नजर मुझपर लगी है,
प्राण-नभ के चाँद की पर चाँदनी सब
दूर निद्रा के नगर मे जा ठगी है,
चेतना जड हो गई है आज ऐसी
प्राण है, पर प्राण मे धडकन नही है !
आज मेरे कठ मे गायन नही है !

ओ गगन के चाँद ! तू क्यो मुसकराता ?
रास किरणो का धरा पर क्यो रचाता ?
क्या नही मालूम तुझको देखकर यूँ
है किसी को चाँद कोई याद आता,
मान जा, ओ मान जा, चचल हठीले !
आज मेरी आग पर बन्धन नही है !
आज मेरे कठ मे गायन नही है !

देख मन करता विरह का यह अँधेरा,
हो कभी जग मे न इस निशि का सवेरा,
बस पडा यूं ही रहूं मैं अन्त दिन तक
बन्द हो यह निठुर सुधियो का न फेरा,
क्या करूँ पर मैं विवश, निष्ठुर समय का
आज मेरे हाथ मे दामन नही है।
आज मेरे कठ मे गायन नही है।।

कल सुबह होगी जगेगा विश्व-उपवन,
कोक-कोकी का मिलन होगा मगन-मन,
खोल सीपी से नयन तुम भी उठोगे
सृष्टि को देकर नया जीवन, नये क्षण,
पर तुम्हे मालूम क्या मेरी निशा को
मृत्यु से कम प्रात का दशन नही है।
आज मेरे कठ मे गायन नही है।।

मेरे जीवन का सुख

37

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया मे,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

हाथो को जो दिया खिलौना ऊषा ने
वह दिन की खीचा-तानी मे टूट गया,
माथे पर जो मोती जडा सितारो ने
वह पतझरवाली गलियो मे छूट गया,
आंगन चौखा, सेज-अटारी पछताई,
दृग भर लाई ढोलक, सिसकी शहनाई
कोई श्याम हठी सूने वृन्दाबन मे
मोहन बन आया, पाहन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया मे
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

मैंने रचा घिरोंदा जो सागर-तीरे
उसे बहाले गई समय की एक लहर,
किसी नयन की नदिया मे जा डूब गया
[illegible]

जिसे किया था प्यार फूल वह शूल हुआ,
जिसे किया था याद ज्ञान वह भूल हुआ
मेरा हर अनमोल रतन इस मेले मे
कचन बन आया, रजकण बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया मे,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

डाल गया था फूल मिलन जो अचल मे
उसे चुरा ले गई साँझ सूनी कोई,
विरह लिख गया था जो गीता अधरो पर
उसे याद कर बदली एक बहुत रोई,
कुछ दिन हँसने की तैयारी मे बीता,
कुछ दिन रोने की लाचारी मे बीता,
मन की रजनी का प्रभात तन के द्वारे
फागुन बन आया, सावन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया मे,
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

जो भी दीप जला सध्या के आगन मे
नही सुबह से उठकर नजरें मिला सका,
जो भी फूल लिखा उपवन की डाली पर
नही साँझ को झूला हँसकर झुला सका,

मुझे न कोई नजर यहाँ ऐसा आता
सुबह-शाम से आगे जो बढ़कर गाता,
जिसने भी छेड़ा सितार यह साँसो का
गुंजन बन आया, क्रन्दन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख दुख की दुनिया मे
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

उस दिन पथ पर मिला एक सूना मन्दिर
सोये थे कुछ स्वर जिसकी दीवारो में,
आँगन मे बिखरा था कुछ चन्दन-कुकुम
अक्षत कुछ अटके थे देहरी द्वारों में
मैंने पूछा तेरा कहाँ पुजारी है?
वह जब तक कुछ कहे कि क्या लाचारी है?
तब तक आँसू एक ढुलक मेरे दृग मे
अर्चन बन आया, दर्शन बन चला गया।

मेरे जीवन का सुख, दुख की दुनिया मे
बचपन बन आया, यौवन बन चला गया।

38

खडी सजी बारात गा रही सखियाँ मगलचार
प्रीति-पालकी लिए द्वार पर बैठे हुए कहार,
दुल्हनिया जाने को लाचार।

लाल रग की बनी चुनरिया, पीत रग की चोली
मुतियनवाली झालर-झूमर, चन्दनवाली डोली,
कानो दमके तारा-कुडल, माथे चन्दा-चदी
सध्या आजे काजल, उषा रचे महावर-रोली
पायल ठिठके, घूघट झिझके, सिसके हिया-पपीहा
किन्तु ठहरना कहाँ हुआ जब परदेसी से प्यार।
दुल्हनिया जाने को लाचार।

देश हुआ परदेस, बिराने बने पुराने साथी,
चली सजन के गाँव सुहागिन सबकी याद भुलाती,
आँगन हेरे, उपवन घेरे, टेरे देहरी द्वारा,
भर-भर आती आँख, पालकी लेकिन उठती जाती,
कैसा यह मन का गठबन्धन, कैसी प्रेम-डगरिया
पहले अपना गेह छुटे फिर मिले पिया का द्वार!
दुल्हनिया जाने को लाचार

देख, विदा की बेला है यह काजल छलक न आए,
तेरी उजली-उजली चादर दाग नही लग पाए,
है चल रही बयार और खा रही झकोले डोली,
घूँघट गोरी थाम न बाहर चाँद कही दिख जाए,
बडा निठुर क्वाँरापन जग मे, बडी निठुर यह पूजा
और निठुर इनसे भी ज्यादा है निष्ठुर ससार!
दुल्हनिया जाने को लाचार

शरम न कर री, यहा न कोई गली रही क्वाँरी है,
आज अगर तेरी तो कल हम सबकी ही बारी है,
आगे-पीछे का अतर बस, भाँवर सबकी पडती,
हर घर नैहर से पी घर जाने की तैयारी है,
मुड-मुडकर मत देख खडा जो बचपन लिए खिलौने
जाने वाले नही देखते पीछे की जलधार!
दुल्हनिया जाने को लाचार

राजकुमारी, जा ! तेरे घर रोज़ बजे शहनाई,
सूरज तेरी गोदी खेले, चन्दा करे ढिठाई,
किरनें तेरी सेज सँवारें, कलियाँ कुन्तल गूँथें,
आँगन लीपे धूप, चाँदनी पानी भरे लजाई,
भूले भटके कभी हमारी सुधि यदि आ जाए
गा लेना यह गीत, गगन जब गाए मेघ-मल्हार !
दुल्हनिया जाने को लाचार !

*

इस द्वार जाऊँ

39

इस द्वार क्यो न जाऊँ, उस द्वार क्यो न जाऊँ ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।

अनजान यह नगर है, अनजान यह डगर है,
न चढाव का पता है, न ढलाव की खबर है,
सब कह रहे मुसाफिर, चलना सँभल-सँभल कर
लम्बा बहुत सफर है, छोटी बहुत उमर है।
पर क्यो डरूँ डराऊँ, पथ खुद न क्यो बनाऊँ,
मैं चढ गया हिमालय, गिर-गिर फिसल-फिसलकर।

इस द्वार क्यो न जाऊँ, उस द्वार क्यो न जाऊँ ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।

बेदाग सूत वाले, सौ दाग सूत वाले,
इस हाट कुछ दुशाले, उस हाट कुछ दुशाले
कुछ कह रहे इसे ले, कुछ कह रहे उसे ले,
इससे बदन छिपा ले, उसका कफन बना ले ।
मैं क्यो इसे कढाऊँ, मैं क्यो उसे धुलाऊँ,
परदा उठा चुका हूँ, चादर बदल-बदल कर।

इस द्वार क्यो न जाऊँ, इस द्वार क्यो न जाऊँ ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर ।

इस छोर एक सरिता, उस छोर एक सगम,
पानी कही बहुत है, पानी कही बहुत कम,
हर बूद का इशारा, हर लहर का निमन्त्रण,
तट का सुनूँ तराना, मझधार का कि सरगम,
पर क्यो न डूब जाऊँ, पर क्यो न तैर आऊँ,
किश्ती डुबा चुका हूँ, लँगर बदल-बदल कर।

इस द्वार क्यो न जाऊँ, उस द्वार क्यो न जाऊँ ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।

इस ओर एक मेला, उस ओर एक मेला,
यह पन्थ भी झमेला, वह पन्थ भी झमेला,
हर आँख हेरती है, हर बाँह घेरती है,
कैसे करूँ अदेखा, कैसे रहूँ अकेला,
पर क्यो नजर चुराऊँ, क्यो भीड मे न जाऊँ,
होली मना चुका हूँ, मैं सर बदल-बदल कर।

इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।

इस गाँव एक काशी, उस गाँव एक काबा,
इसका इधर बुलावा, उसका उधर बुलावा,
इससे भी प्यार मुझको, उससे भी प्यार मुझको,
किसको गले लगाऊँ, किससे करूँ दिखावा।
पर जात क्यों बनाऊँ, दीवार क्यों उठाऊँ,
हर घाट जल पिया है, गागर बदल-बदल कर।

इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ?
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल-बदल कर।

छः मुक्तक

40

उनको बदलने के लिए हमको बदलना ही पडा,
चांद बनने के लिए सूय को ढलना ही पडा,
नभ के तारे न करें व्यग्य कही धरती पर
इसलिए रात मे हर दीप को जलना ही पडा।

चांद को द्वार से यूं ही न पलट जाने दो,
बादलो का जरा घूंघट यह उलट जाने दो,
उम्र तो सारी पडी है अभी रोने के लिए
आज की रात तो हसते हुए कट जाने दो।

डबडबाया है जो आंसू यह मेरी आंखो मे,
इसको तेरे किसी अहसान की दरकार नही,
जो इबादत भी करे और शिकायत भी करे
प्यार का है वह बहाना तो मगर प्यार नही।

पत्थरो के ओ पुजारी, न मुझे और भुला,
दायरा और तेरा द्वार भी हर देख लिया।
तू तो इसान मे इसान भी न देख सका
मैंने इसान मे भगवान मगर देख लिया।

तुम जो निरुद्देश्य लिखे जाते हो
लिखना यह वेटिकिट सफर है, दोस्त!
रास्ते में ही कहीं 'चैक' न तुम हो जाओ—
सिर्फ यही, सिर्फ यही, सिर्फ यही डर है, दोस्त!

बुझ चुकी सिगरिटें, गुल बाकी हैं
अधजली तीलियाँ पड़ी आगे,
ऐशट्रे में धुआँ कुछ घूम रहा,
आज सब सोए फकत हम जागे!

41

गहरे, बहुत गहरे एक मोती है—
साँस के धागे मे आयु जिसे रात-दिन पिरोती है।
डूबता हू बार बार गोता लगाता हू
लहरो से लडता हू, तट से टकराता हू
बूँद-बूँद चुनकर खुद बूँद हुआ जाता हू
अजलि, पर अन्त समय खाली ही पाता हू।
गहरे, बहुत गहरे एक मोती है—
तट पर हर एक तरी जिसके लिए रोती है।
गहरे, बहुत गहरे एक मोती है।।
जाल सौ फेंके पर हाथ लगी उलझन ही,
छाने सब सागर पर मिली सिर्फ सिसकन ही,
पुतली पथराईं, दृग बादल बन आए, पर
रात हर एक रही निर्जन की निर्जन ही।
दूर, कही दूर एक मोती है—
हर राह जिसके लिए चल-चलकर थकती है, सोती है।
दूर, कही दूर एक मोती है।।

बचपन से पूछा वह मचल पड़ा,
और ले ले खिलौना कहीं खो गया,
यौवन से मांगा तो दर्पण दिखाकर
पथ-बीच कहीं सो गया,
जिससे भी चर्चा की जाना वह अनजाना हो गया
जनम-नयन आँज-आज हँस गया
मरण सेज बिछा-बिछा रो गया।
एक अनमोल कहीं मोती है—
इर्द-गिर्द जिसके यह सुबह-शाम मोती है।
एक अनमोल कहीं मोती है।।
मन्दिर के द्वार गया दृश्य मिला, दरस नहीं,
ग्रन्थ गुने रहस दिखा, परस नहीं,
ज्ञान-ध्यान, पूजन-व्रत-वन्दन सब व्यर्थ गए
एक पल शान्ति नहीं, एक निमिष हर्ष नहीं।
अनबीधा एक कहीं मोती है—
माँग भरने को जिसे सृष्टि भाल धोती है।
अनबीधा एक कहीं मोती है।।
मिला नहीं रत्न और माला अधूरी है,
आयु चुक गई है एक पर अर्चना न पूरी है,
किस तरह आऊँ पास, कैसे रिझाऊँ तुझे?
मेरे-तेरे बीच एक मोती की दूरी है।
तू ही बता कहाँ वह मोती है—
जिसे बिना पाए भेंट तुझसे न होती है।
तू ही बता कहाँ वह मोती है।।

कैसा अज्ञानी मैं अब तक यह जाना नही,
सामने मनुष्य जो खडा है पहचाना नहीं,
आँख मे जो आँसू है, उसको अनुमाना नही,
सागर ही खोजा किया भू को सम्माना नही।
दूर नही पास, बहुत पास एक मोती है--
सामने की चीज़ मगर दूर बहुत होती है।
पास, बहुत पास एक मोती है।।

गीत

42

अब ज़माने को खबर कर दो कि 'नीरज' गा रहा है!

जो झुका है वह उठे अब सर उठाये,
जो रुका है वह चले नभ चूम आये,
जो लुटा है वह नये सपने सजाये,
जुल्म-शोषण को खुली देकर चुनौती,
प्यार अब तलवार को बहला रहा है।
अब ज़माने को खबर कर दो

हर छलकती आँख को वीणा थमा दो,
हर सिसकती साँस को कोयल बना दो,
हर लुटे सिंगार को पायल पिन्हा दो,
चाँदनी के कंठ में डाले भुजायें,
गीत फिर मधुमास लाने जा रहा है,
अब ज़माने को खबर कर दो

जा कहो तम से करे वापस सितारे,
माँग लो बढ़कर धुँएँ से सब अँगारे,
बिजलियों से बोल दो घूँघट उघारे,
पहन लपटों का मुकट काली धरा पर,
सूर्य बनकर आज श्रम मुसका रहा है,
अब ज़माने को खबर कर दो

शोषणों की हाट से लाशें हटाओ,
मरघटों को खेत की खुशबू सुँघाओ
पतझरों में फूल के घुँघरू बजाओ,
हर कलम की नोक पर मैं देखता हूँ
स्वर्ग का नक्शा उतरता आ रहा है।
अब ज़माने को खबर कर दो

इस तरह फिर मौत की होगी न शादी,
इस तरह फिर खून बेचेगी न चाँदी,
इस तरह फिर नीड़ निगलेगी न आँधी,
शान्ति का झण्डा लिये कर में हिमालय
रास्ता ससार को दिखला रहा है।
अब ज़माने को खबर कर दो कि 'नीरज' गा रहा है।

43

बिजली की पायल पहने दिशा ठुमकती है
शायद नभ बादल-राग सुनाने वाला है।

उल्काओ के रथ पर सवार हो गई हवा
डस लिया तिमिर-अजगर ने तारो का राजा,
ज्वालामुखियो का ताज पहन हँस रही धूल
है बजा रहा तूफान समुन्दर का बाजा

डगमगा रहे पर्वत-पठार लगता मुझको
नाराज धरा को नाश मनाने वाला है।
बिजली की पायल पहने दिशा ठुमकती है
शायद नभ बादल-राग सुनाने वाला है।।

जुड रही हलो की भीड गली-चौराहो पर
खिल रहे नग्न डालो मे फूल अँगारो के,
हँसियो मे चमक हथौडो मे आ गई जान
गा रही कुओ पर गगरी गीत मल्हारो के

आंधी का भूला डाल जवानी भूल रही
शायद यौवन सावन बन जाने वाला है।
बिजली की पायल पहने दिशा ठुमुकती है
शायद नभ बादल-राग सुनाने वाला है।।

आ रहा पसीना ठण्डे शात हिमालय को,
कोरिया, मलाया, चीन सभी मे हलचल है,
है उगा रही इन्सान एशिया की ज़मीन,
नेपाल, श्याम, बर्मा की भौंहो मे बल है।

श्रम ने उँगली पर उठा लिया पूंजी-पहाड,
फिर से युग कोई रास रचाने वाला है।
बिजली की पायल पहने दिशा ठुमुकती है
शायद नभ बादल-राग सुनाने वाला है।।

गर कलम न छीनी गई

44

गर कलम न छीनी गई तो हिन्दुस्तान बदलकर छोड़ूंगा।
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूंगा।।

मैं देख रहा हूं भूख उग रही है गलियों बाजारों में,
मैं देख रहा हूं ढूंढ़ रही बेकारी कफन मजारों में,
मैं देख रहा हूं कला बन गई है तिजोरियों की चाबी,
मैं देख रहा इतिहास कैद है चांदी की दीवारों में,
मैं देख रहा हूं दूध उगलने वाली धरती प्यासी है,
मैं देख रहा हर दरवाजे पर छाई मौत उदासी है,
मैं देख रहा मुट्ठी भर दाने पर बिकता सिन्दूर खड़ा
मैं देख रहा हर सुबह सूर्य के ही घर में सन्यासी है
खुद मिट जाऊँगा या यह सब सामान बदलकर छोड़ूंगा।
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूंगा।।

मैं अगारे ही गाऊँगा जब तक दिनमान न निकलेगा,
आँधी खुद ही बन जाऊँगा जब तक तूफान न निकलेगा,
मैं यूं ही अपने शीश रहूगा पहने ताज कफनवाला,
जब तक मेरे शव पर चढकर मेरा बलिदान न निकलेगा,
मेरा है प्रण जब तक यह काली निशा नही उजियाली हो
तब तक रोशनी सकल जग को मेरे लोहू की लाली हो,
मेरा है कौल कि आता है जब तक न यहा मधुमास नया
तब तक मेरी ही कलम मुरझती बगिया की हरियाली हो
मैं स्वर का नया शहीद साज हर गान बदलकर छोड़ूंगा।
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूंगा।।

मुझको फाँसी का फन्दा दिखलाकर तुम मोड नही सकते,
मुझ पर तलवारें अजमाकर मुझको तुम तोड नही सकते,
वेडी-हथकडियो से मेरी मिट्टी ही बस बँध सकती है,
मेरे विद्रोही गानो पर तुम गाँठें जोड नही सकते,
मैं उस माँ का वेटा हू जिसकी गोद लहू से लथपथ है,
मैं उस बहन का फूल कि जिसका पतझारो का ही पथ है,
मैं उस चिराग की ज्योति जला जो जीवन भर तूफानो मे
मैं उसका सेज-सुहाग मरण-आलिगन ही जिसका व्रत है,
मैं नवयुग निर्माता हू रूढि-विधान बदलकर छोड़ूंगा।
इसान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूंगा।।

मैं उन्हें चाँद दूगा जिनके घर नही सितारे जाते हैं,
मैं उन्हे हँसी दूंगा जिनके घर फूल नही हंस पाते हैं,

मैं उनका तीरथ हू जिनके पैरो की मिट्टी काशी है
उनका सावन हू जो रेगिस्तानो से हाथ मिलाते हैं,
वे सभी उजाले मे आयें जो अंधियारे मे खोये हैं,
वे सभी देश गौरव हो जो निज श्रम से दीप सजोये हैं,
तुमसे कोई दुश्मनी नही बस इतना कहना है मेरा
वे सभी हसें जो रोये हैं, वे सभी जगें सो सोये हैं,
गर यह न हुआ तो सचमुच तीर कमान बदलकर छोड़ूगा ।
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूगा ।।

अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

45

(1)

शीश पर घिरे घुमड़ते काल-
प्रलय के बादल-दल विकराल,
विघुर काजल-सी काली रात,
न कोई साथी - सगी साथ,

कठिन पथ - ध्येय, पथ अज्ञात,
दूर मंजिल, अति दूर प्रभात,
धरा तमग्रस्त, गगन तमग्रस्त,
दिशा तमग्रस्त, नयन तमग्रस्त,

पन्थ तमग्रस्त, वदन तमग्रस्त,
देह तमग्रस्त, बदन तमग्रस्त,
श्वास की मुक्त पवन तमग्रस्त,
गीत की अरुण किरण तमग्रस्त,

कल्पना कलित अतन तमग्रस्त,
सृष्टि-कण-कण तृण-तृण तमग्रस्त,
चतुर्दिशि अजगर-श्वास समान,
फुफुक फुफुकार रहे तूफान,

चडकते तड-तड अजड पहाड,
चडड-चड पेड रहे चिंघाड,
धडकते भूमि-खण्ड वन - खण्ड,
दरकते दुर्ग अटूट अखण्ड,

रोकते राह पहाड - पठार,
झाड-झखाड, उजाड कछार,
न नभ मे ज्योति, न जग मे ज्योति,
न कर मे ज्योति, न मग मे ज्योति,

विघूर्णित उदधि पर्वताकार,
तोडता सृष्टि - सदन के द्वार,
कांपते स्वर्ग - नरक के छोर,
किन्तु वह कौन लक्ष्य की ओर—

बढ रहा जो निज सीना तान,
चीर तम ज्योतित बान समान?
अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व!

(2)

सामने मन - मन्दिर वीरान,
धधकता मरघट - सा सुनसान,
देवता का शव कफन - विहीन,
धूल मे पडा, धूल - सा दीन,

हृदय की चिर-सचित अभिलाष,
बुझे जीवन की अन्तिम आस,
चिता - सी धधक विदग्ध अधीर,
जल रही उर-यमुना के तीर,

चपल अनगिन तुतले अरमान,
फैल सब ओर अँगार - समान,
धधक धधकाते मरघट-ज्वाल,
जला सुधि - साँसो के ककाल

स्वप्न के अनगिन छाया - प्रेत,
मौन कर-कर प्यासे सकेत,
हृदय मे उपजाते भय - भ्रान्ति,
अनन्त अशान्ति, अनन्त अशान्ति,

चीखता अन्ध - उलूक - अतीत,
निशा भयभीत, दिशा भयभीत,
न वह कोकिल कलकण्ठ-पुकार,
न वह अब मधुकर की गुन्जार,

न वह अब पायल की झंकार,
कहाँ वे स्वर मधुमय सुकुमार ?
पड़े सब बनकर माटी - धूल
फूल बुलबुल के बने बबूल,

प्राण में हर - हर हाहाकार,
श्वास में रुद्ध चीख - चीत्कार,
नयन में थिरक रही जलधार,
देह का रोम - रोम अंगार

उठ रहा मस्तक में तूफान,
न तन का ध्यान, न मन का ध्यान,
अधर पर से फिर भी मुसकान,
गा रहा जो नवयुग के गान—
अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

(3)

उगलता अंगारे आकाश,
जल रहे दिशि दिशि, गृह आवास,
पवन मारता अग्नि के बाण,
धरा म्रियमाण, सृष्टि म्रियमाण

पेड़ जलते, पथ रहे कराह
सिसकते वन, भू भरती आह,
चीखती चील ताप से त्रस्त
सकल कण-कण तृण ऊष्माग्रस्त,

शापित-तापित हो छिन्न मलीन,
स्वय छाया भी कुंचित-पीन,
मौन तरु, मौन नगर-वन-ग्राम,
बनी दोपहर मरण की शाम,

मौन पनघट-तट-नौकाधार,
मौन मधुवन मधुकर-गुंजार,
चल रहा अग्निल झझावात,
दग्ध सब लता-वेलि-तरु-पात

किन्तु वह कौन-कौन अधनग्न ?
देह-तन भग्न, प्राण-मन भग्न,
भाल मे चिन्ताओ की भीड
हृदय मे लाचारी की मीड,

नसो मे शोषित सूखा रक्त
खीचने मे भी खाल अशक्त,
सफेदी मे केशो की श्रान्त,
झांकती छाया-मृत्यु अशान्त,

बुझ रही दीपक लौ सी दीठ
पीठ मे पेट, पेट मे पीठ,
पोत पतझड-सा कपित गात,
पदो मे साँझ, नयन मे रात।

किन्तु फिर भी जो ले हल-बैल,
भूमि पर स्वय बीज-सा फैल,
सीच श्रम से बजर-वीरान,
खाद-तन की दे पुलकित प्राण,

जोतकर जो-जो तिल-तिल भूमि,
धूल-माटी अधरों से चूम,
'प्राणमय अन्न अन्नमय प्राण'
सूत्र का तन धर मूर्तिमान,

स्वय भूखा रहकर दिन-रात,
स्वय प्यासा रहकर दिन-रात
कर रहा भूखे जग को दान,
कर रहा प्यासे जग को दान,

अन्न का दान, प्राण का दान,
नीर का दान, वस्त्र का दान—
अमर वह व्यक्ति, अमर व्यक्तित्व !

मिट्टी वाला

46

घर-घर मे आवाज़ लगाते मिट्टी ले लो मोल,
गाँव-गाँव इस धुन्ध धूप मे भूखे-प्यासे डोल,
चिकनी, खुदरी, गीली, सूखी, काली, पीली, श्याम,
लाद गधो पर तरह तरह की मिट्टी यह बेनाम,

खोज रहे तुम किस सौदागर को ओ मिट्टी वाले!
कौन यहा जो इस अनमोल वस्तु का मोल चुका ले!
अरे, कहा क्या—बस दो पैसे एक गधे का दाम,
कुछ कम भी हो सकता है यदि ले लूं माल तमाम?

यह कैसा व्यापार, अरे, यह कैसा है उपहास!
दो पैसो मे बेच रहे तुम मिट्टी का इतिहास!
यह कैसी मजबूरी, भाई यह कैसी लाचारी!
मिट्टी की सम्पत्ति बिक रही कुछ पैसो मे सारी।

आस-पास ही देख रहा हूँ मिट्टी का व्यापार,
चुटकी भर मिट्टी की कीमत जहाँ करोड हजार
और सोचता हूँ आगे तो होता हूँ हैरान,
बिका हुआ है कुछ मिट्टी के ही हाथो इन्सान

ये एटम, ये टैंक गनें ये गैस मशीनें, यान,
कुछ मिट्टी के लिए कर रहे मिट्टी का बलिदान,
और बाँटने को मिट्टी से बस मिट्टी का प्यार,
खडी बीच मे है मिट्टी के लोहू की दीवार,

यह चाँदी की चहल-पहल, यह मय-मीना का शोर
यह पेरिस की रात, कोरिया की यह काली भोर,
यह चितवन की चकाचौंध, यह चुम्बन के बाजार,
ताम्रकाल वह, लौहकाल यह, सोने का ससार,

ये भिखमगे, ये नगे, ये तुन्द महाजन सेठ,
यह अमरीका, यह ब्रिटेन, यह डालर रोटी-पेट,
मदिर, मस्जिद, गिरजेघर, ये भक्त और भगवान
बस कुछ मिट्टी लिये लगाये सब अपनी दूकान।

कलाकार, पैगम्बर, नीतिक, बुद्ध सिकन्दर सारे,
सभी जिन्दगी मे मुट्ठीभर मिट्टी से बस हारे।
और उसी मिट्टी को तुम यो लुटा रहे बेमोल
चीख उठेगी कब्र किसी की, अरे संभलकर बोल।

अरे, सँभलकर बोल, अभी सोयी है थककर लाश,
झरे फूल के पास खडा है बुलबुल का उच्छ्वास।
कैसा है वह कुम्भकार, यह कैसा क्रूर विचार,
दर-दर मारी फिरे गधो पर मिट्टी यह सुकुमार!

यह अचरज की बात नही, यह कोई बात अजानी,
'मिट्टी को अच्छी लगती है मिट्टी की कुर्बानी।'

अह की कारा

47

मेरे ताले की कुंजी कही खो गई है,
और जिन्दगी एक छोटे से कमरे मे बन्द हो गई है।
वैसे यहाँ कोई मुझे कष्ट नही,
सभी आराम है,
रेशमी रजाई है,
गुदगुदा विस्तर है,
साफ-सुथरा फर्श है,
लिपी-पुती पक्की दीवारें है (चोरो का डर नही)
खिडकियाँ हैं,
रोशनदान है,
हवा भी आती है,
कभी कभी बाहर की धूप झाँक जाती है,
लेकिन एक बात है
और वह यह कि मेरी बहुत बडी दुनिया अब बहुत छोटी हो गई है,
क्योकि मेरे ताले की कुंजी कही खो गई है।

दुनिया वह—
जहाँ भौंरे गाते हैं,
पत्ते गुनगुनाते हैं,
फूल मुसकराते हैं,
सुबह-शाम सूरज-चाँद आरती सजाते हैं,

दुनिया वह—
जहाँ हवा पेड़ों पै झूला झूल जाती है,
बादल की आँख नदी बनकर डबडबाती है,
केसर की क्यारी झूम तालियाँ बजाती है,

दुनिया वह—
जहाँ अन्नदाता के बैल हैं,
हल हैं,
खुरपी है, कुदाली है,
श्रम की दीवाली है।

दुनिया वह—
जहाँ ढीठ कोयल की कूक है,
पपीहे की हूक है,
सबके दिलों में एक प्यार की भूख है,
कजली की कसक जहाँ जगती है,
बिरहा की बहक जहाँ लगती है,
साँसों के सरगम में बाँसुरी-सी बजती है।

दुनिया वह—
जहाँ हवा-पानी की गुन-गुन है,
कलियो की कुनमुन है,
माटी की रुनझुन है,
बगिया के राधा कन्हाई की अनबन है।

दुनिया वह—
जहाँ भीड-मेला है,
मोटर-बसो का सैलाब-जैसा रेला है,
बम-बदूको की चर्चा है,
खबरो-अखबारो की बरखा है,
डलेस की युद्ध नीति, नेहरू की शाति-नीति, गाधी का चरखा है,
यह सारी दुनिया, जो सचमुच ही दुनिया है,
आज मेरे लिए सिर्फ, मेरे दरवाजे ही कफन ओढ सो गई है।
क्योकि मेरे ताले की कुंजी कही खो गई है।

किसको बुलाऊँ मैं ?
भीतर से बद हूँ, बाहर से ताला यह कैसे खुलवाऊँ मैं ?
अपने हाथ गढी हुई कारा यह कैसे जलाऊँ मैं ?
तो फिर क्या ऐसे ही बद मुझे रहना है ?
अपना अकेलापन पडे-पडे सहना है,
अधजली सिगरेट-सा इसी तरह दहना है ?
नही, नही यह सब असम्भव है,
बाहर जो हलचल है उसके लिए सभी कुछ सम्भव है ?
सूरज निकलने की देर है,

अबेर है,
नहीं अँधेर है,
भीड जब आएगी,
कुँडी खटखटाएगी,
द्वार बद पाएगी तो रोष मे आएगी,
तब यह प्राचीर एक छिन मे टूट जाएगी।
फिर एक ताला नहीं,
लाख लाख ताले खुल जाएँगे,
तन-मन के किवाड जिनमे कालिख लगी है खुद-ब-खुद धुल जाएँगे,
जनम जनम के छुटे मीत मिल जाएँगे,
और यह कमरा तब आँगन बन जाएगा,
होगी दीवार न तो आँगन यह त्रिभुवन बन जाएगा।
फिर न किसी ताले या कुजी की खोज होगी,
होली दीवाली रोज रोज होगी,
यानी पूर्णमासी यह दौज होगी।
तब न कोई छोटा और बडा होगा,
तब न कोई बैठा और खडा होगा,
दीपक की बाहो मे सूरज जडा होगा।
आज मगर ताले की कुजी कही खो गई है
इसीलिए सपनो की रात मेरा आचल भिगो गई है,
और चार ईंटो मे साँस दफन हो गई है,
क्योकि मेरे ताले की कुजी कही खो गई है।

मैं कवि नहीं हूं

48

(1)

दोस्त ! तुम ठीक ही कहते हो
सचमुच मैं कवि नही हूँ !
होते हैं कवि, वे नही गाते हैं,
दुखी-दलित जनता के पास नही जाते हैं,
जाते भी हैं, तो शरमाते हैं,
अपने ही एक बन्द कमरे मे
साधना करते हैं,
लिखते हैं,
पढते हैं,

मौत आती है मर जाते हैं।
और मैं गाता हूँ, दुनिया को भाता हूँ
लाख-लाख लोगों की चोटें सहलाता हूँ,
घावों पर मरहम लगाता हूँ,

गिरे को उठाता हूँ,
भूखे को खिलाता हूँ,
बेबस निगाहों पर,
एक जादूभरी मोहिनी सी डाल आता हूँ,
और मेरा द्वार कभी बन्द नहीं होता है,
कुंडी लगाकर वह कभी नहीं सोता है,
जो भी पास आए
गरीब या अमीर,
राजा या फकीर
वह सबसे गले मिलता है,
हर एक बाँह मे गुलाब-जैसा खिलता है।
क्योंकि पास मेरे जो कुछ है,
मेरा नहीं वह ससार का है,
मेरा हर गीत, हर अश्रु
मेरा तन,
मेरा मन,
मेरा धन,
मेरा सारा का-सारा अस्तित्व ही उधार का है,
दो चार का नहीं, हजार का है।

दूसरे की चीज़ है जो
उसे बन्द रखने को पाप मैं समझता हूँ,
कल जिसे देना पडेगा ही श्राज उसे
खुशी-खुशी देने म मैं नही हिचकता हूँ,
अक्लमन्दी का एक सबूत पेश करता हूँ।
दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हूँ!

(2)

दोस्त! तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हू!
कवि के लिए तो कला सिफ कला होती ह
और मेरे लिए कला धूप है।
धूप—जो सोए ससार को जगाती है,
हँसने पर जिसके
न कोई आँख, आस्तान गोलो रह पाती है,
सबके घरो मे अधेरी भाग जाती है,
नई सुबह आती है।

और जिसकी छाया मे
शशव निकलता है,
यौवन उछलकर पहाडो पर चढता है,
फूल मुसकराते है,
खेत-खलिहान गुनगुनाते हैं,
नदियाँ लहरती हैं,

गेहूँ की बालियाँ सिहरती हूँ,
मेले जुड़ा करते हैं,
आँखों मे नये-नये स्वप्न उड़ा करते हैं।
घर से निकलकर हम दुनिया मे आते हैं
काम पर जाते हैं,
कलम, हल, कुदाली और तूलिका चलाते हैं,
खेलते हैं, कूदते हैं,
रूठते मनाते हैं,
प्यार करते हैं, शरमाते हैं,
तीज-त्योहार, व्याह-भाँवर रचाते हैं,
एक से अनेक हो जाते हैं।
दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हूँ,
क्योंकि कला मेरे लिए धूप है
और वह तुम्हारे निकट रात है।

(3)

दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हूँ।
होते हैं कवि जो—
वे वाद पर विवाद किया करते हैं,
मोटे-मोटे ग्रन्थो को
पढते हैं,
गुनते हैं,

याद किया करते है
और फिर नई-नई शलियाँ ईजाद किया करते हैं।
किन्तु, मैं कोई भी वाद नही जानता हूँ,
कोई सिद्धान्त नही मानता हूँ,
सिफ आदमी को पहचानता हूँ।
उसकी मुट्ठी मे जो भविष्य है,
उसको बस पढ लेना चाहता हूँ
और उसे छन्दो मे जड देना चाहता हूँ।
यानी, जहा आज ससार है
उससे दो-चार कदम आगे बस बढ लेना चाहता हूँ।
शिक्षा भी यह मैंने
कालिज-स्कूलो के बीच नही पाई है,
सच पूछो तो, वहा उम्र ही गँवाई है।
अनुभव ही मेरा शिक्षालय है,
जीवन ही शिक्षक है,
प्रेम ही पाठ है,
मेरी किताब हर गली, हर हाट है
और मेरा इम्तहान—
आँधियो मे दीपक जलाना है,
रातो मे सूरज बुलाना है,
सूखे मुरझाए फूल
धूल में जो लेटे है,
उनको उठाकर खिलाना है,
घर-घर बहार नई लाना है।

दोस्त ! तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हूँ।
होते हैं कवि जो, वे सोते है,
और मैं जागता हू—
समचुच मैं कवि नही हूँ।

(4)

दोस्त ! तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हूँ।
होते हैं कवि जो, वे
भारतीय कविता मे
लन्दन की जूठी उपमाएँ दिया करते हैं,
पूरब के प्याले मे पश्चिम की शेम्पेन भरते हैं,
टेम्स मे नहाते हैं, गगा से डरते हैं,
राधा पर नही, यानी जूलियट पर मरते हैं।
पश्चिम से वैर नही मेरा है,
टेम्स के तट का भी प्यारा सवेरा है,
पर, मुझे जाने क्यो पूरब का सूरज लुभाता है,
गगा मे नहाता हूँ तो
वाल्मीक मेरी आत्मा मे बैठ जाता है,
व्यास मुझे गोद मे उठाता है,
कालिदास माथा सहलाता है
सूर और तुलसी का विश्व-प्रेम
मझको मनुष्य के समीप बुला लाता है।

शायद मेरा इनसे पुराना कुछ नाता है।
क्या करूँ, बिलकुल मजबूर हूँ
बहुत चाहता हूँ यह न किन्तु टूट पाता है।
जूलियट की अलकें भी सुन्दर हैं,
वे भी उलझाती हैं,
साँसो से गीत गवा जाती हैं,
डूबता हूँ लेकिन जब राधा के आँसू मे
मेरी कविताएँ तब ऋचाएँ बन जाती हैं।
दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हूँ।
होते हैं कवि, वे विदेशी बुशशर्ट ही पहनते हैं
और मैं स्वदेशी हूँ
भीतर से बाहर तक स्वदेशी हूँ।
सचमुच मैं कवि नही हूँ।

(5)

दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो,
सचमुच मैं कवि नही हूँ।
होते हैं कवि जो इतिहास उन्हे जपता है,
उन पर आलोचनाएँ बिकती हैं,
और उनका चित्र पाठ्य-पुस्तको मे छपता है।
लेकिन इतिहासो मे मेरा कही नाम नही,
पाठ्य-पुस्तको को भी मुझसे कुछ काम नही,
आलोचक मुझे मिलें—ऐसी रगीन मेरी शाम नही,

मेरा नाम लिखा है पहाडो पर,
नदियो पर, सागर-किनारो पर,
समय के मस्तक पर,
जलते मरुस्थल पर
जागते सूरज और ऊँघते सितारो पर।
और मेरे गीत उन होठो के मन्त्र हैं,
नये इन्सान की जो मूरत बना रहे हैं,
स्वग को जमीन पर ला रहे हैं,
आँधियो के गले बाँह डाल
बिजलियो को शरमा रहे है,
सूरज के बाल सहला रहे हैं,
एक नया जादू दिखा रहे हैं।
पैसफिक पाँव जिनके धोता है,
इतिहास जिनकी गोद मे खेल बडा होता है,
काव्य जिनकी छाया के साथ खडा होता है।
और वतमान नही,
मुझ पर लिखेगा भविष्य लेख।
वह भविष्य—
जिसकी आलोचना के मानदण्ड
छन्द नही, ग्रन्थ नही,
आँसू वे होगे जो—
मानव की आँखो के आँसू जो
रामायण और सूर सागर के पृष्ठो से
युग-युग पर बरसे थे

और जिनकी छाया मे
कला, धम, सस्कृति के मृत प्राण सरसे थे।
सचमुच मैं कवि नही हूँ,
क्योकि उन्ही आँसुओ का गायक हूँ,
बहुत नासमझ हूँ,
तुम्हारे नही लायक हूँ।
दोस्त, तुम ठीक ही कहते हो,
समभुच मैं कवि नही हूँ।
सचमुच मैं कवि नही हूँ॥

देश के करोडो बेकारो से !

49

मिली नही नौकरी तुम्हे गो सभी जगह कुडली दिखाई,
    कि पांव मे पड गई बिवाई, कि भाग्य को आ गई रुलाई।
खडे-खडे क्यू मे उम्र बीती झुके-झुके दिन का सूर्य डूबा,
    उमीद हर नाउमेदी लाई, हरेक सुबह बनके शाम आई ॥

उदास चेहरे से एक दिन भी न झांकी कमलो की पाती कोई,
    उजाड आंखो के पास आई न सपनो वाली बरात कोई।
रुंधे गले से कभी न फूटा किसी पिया का प्रणय पपीहा,
    थके चरण को सदा थकाती रही थके दिन की बात कोई ॥

बहार तुमसे नजर चुराकर सदा दूसरी गली से गुजरी,
    हंसी-खुशी रूठ करके तुमसे सदा पराये चमन मे उतरी।
तुम्हारे आंगन की धूल छूते ही फूल की झर गई पंखुरियां,
    तुम्हारा दरवाजा देखते ही सुबह की लौ बनके शाम बिखरी ॥

न तुमने पूनो का चाद देखा, न जाना हँसता है फूल कैसे,
न रोशनी ने तुम्हे पुकारा, न चादनी ने कहे सदेसे।
दिये जले सव जगह कि जव हर कुटी महल, छत, मुंडेर पर तो,
कि जैसे मरघट मे मौत घूमे रही रात घर तुम्हारे ऐसे॥

हमेशा रोटी की एक चिन्ता ने फाँसी दे दी हर एक सपन को,
हमेशा कुचली हुई उमीदो ने नोच डाला हर एक लगन को।
कहाँ गरीवो पै इतना पैसा कि चाँदनी को खरीद पाये,
कहा है भूखो को इतनी फुरसत कि देख फूलो सजी दुल्हन को॥

भरी जवानी मे भी न तुमने कभी सितारो के गीत गाये,
वसन्त ऋतु मे भी अपनी राधा को तुम न गजरे खरीद पाये।
सुरग सावन मे भी सुहागिन कलाइयो मे पडी न चूडी,
ठिठुरती रातो मे भी रही से उधार दो कोयले न आये॥

दशहरे मे भी तुम्हारे वच्चे न खेल पाये कभी खिलौने,
न हाय होली के दिन भी सूखे तुम्हारी आखो के गीले कोने।
दीवाली के दिन भी एक दोना न ला सकी लक्ष्मी घर तुम्हारे,
निराश राखी के दिन भी सिसके सगुन के धागे सजे सलोने॥

कभी जहर खाके सो गये तुम कभी समन्दर मे ली समाधी,
कभी पटरियो पै लेट अपने लहू से रग दी सफेद खादी।
कभी लगाई छलाँग छत से, कभी किसी वन मे भूला भूले
न जाने तुमने हैं कितने खोये जवान नेहरू जवान गाँधी॥

उस रोज़ चुस्की के वास्ते जब सिसक के मुन्नू खुद सो गया था,
तब क्या बताऊँ, तुम्हारे अन्तर के घाव को क्या-क्या हो गया था।
उस रोज जब बेचने को निकले थे करधनी तुम लुटी बहन की,
तब पानी कितने समुन्दरो का न जाने आँखो मे रो गया था॥

किराया पाये बिन, देके गाली, जब उठ गया था मकान वाला,
तुम्हे लगा था कि तेज भाले ने जैसे तुमको ही छेद डाला।
पर आह भर बस तुम रह गये थे, न कह सके कुछ न कर सके थे,
क्यूकि गरीबी की सिर्फ इज्जत है एक सूखा हुआ निवाला॥

हाँ, जब दवाई बिना तुम्हारे पिता की मंजिल तै हो रही थी,
बिना कफन जब तुम्हारी माँ की ही लाश आँगन मे सो रही थी,
बिना दूध जब तुम्हारे नन्हे से चाद को लग रहा गहन था,
बिना स्नेह जब तुम्हारे घर की ही रोशनी घर मे खो रही थी—

तब घूमते थे उदास सडको पै तुम लिये डिगरियो का बस्ता,
तब आँख मे सावनो को रोके खडा था एक बादलो का दस्ता।
मगर पता था नही तुम्हे यह निराला, टैगोर के सपूतो!
है आज के इस स्वतन्त्र भारत मे आदमी कौडियो से सस्ता॥

हज़ार कोशिश की तुमने लेकिन नही तुम्हारा ही नाम आया,
कि तुम सभी मे थे योग्य इससे तुम्हे कमेटी ने काट खाया।
वह जो गधो का था एक नायक जो लाद सकता था सिर्फ लादी,
क़लम के सौदागरो ने उससे तुम्हारे तुलसी का सर झुकाया॥

है आज की योग्यता सिफारिशें तुम अपनी ये डिगरियाँ जला दो,
इन कालिजो पर अगार फेंको इन सर्टीफिक्टो को जा बहा दो।
न पढने-लिखने की है जरूरत, न कम्प्टीशन के कुछ हैं मानी,
तुम्हे मिलेगी हरेक सर्विस किसी मिनिस्टर से खत लिखा दो॥

उदास मत हो मगर बहुत दिन न सत्य का यूँ सहार होगा।
न यूँ अनय का गजर बजेगा न न्याय पर यू प्रहार होगा,
निराश मत हो, निराशा मुर्दों की ही वसीयत है सिर्फ भाई,
जो डगमगाता है आज वेडा वह पार होगा—वह पार होगा॥

मैं गा रहा हूँ कि तुम पहाडो को हाथ मे गेंद-सा उठा लो,
मैं गा रहा हूँ कि तुम सितारो के हाथ से रोशनी छिना लो,
मैं गा रहा हूँ कि ताज तख्तो की ठोकरो से धजी उडा दो,
मैं गा रहा हूँ कि अपनी साँसो को बिजलियो का कवच पिन्हा दो॥

मैं गा रहा हूँ कि जुल्म का तुम सभी बराबर हिसाब कर दो,
मैं गा रहा हूँ इस उजडी बस्ती को तुम खिलाकर गुलाब कर दो,
मैं गा रहा हूँ कि मार दो तुम तमाचा बढ नादिरो के मुँह पर,
मैं गा रहा हूँ कि हर नदी को लहू मिलाकर दुआब कर दो॥

डरो नही तुम उठो घटाओ से झूमकर हर गगन पै छाओ,
करोडो तुम हो बढो, हिमालय शिरो से एक दूसरा बनाओ।
वह भूख तुम मे है जो कि शेरो के जबडे हाथो से फाड डाले,
उसे हवाओ के साथ महलो की ओर मोडो, कसम दिलाओ॥

इन स्याह सांपो के फन कुचल दो, इन खूनखोरो के दांत तोडो,
इस गगा जमुना का रुख वदल दो, इन आधियो की कलाई मोडो।
वे जो खडे हँस रहे हैं तुम पर, गिरो टूट विजलियो से उन पर,
ये फूल की पँखुरियाँ जो विखर पडी है इनकी कतार जोडो॥

उठोगे तुम तो यह सूनी सध्या ही लाल होकर किरन बनेगी,
बढोगे तुम तो हरेक मजिल ही खुद तुम्हारा चरण बनेगी।
मिटोगे तुम तो तुम्हारी धरती का और उज्ज्वल सुहाग होगा,
गिरोगे तुम तो यह धूप यह चांदनी तुम्हारा कफन बनेगी॥

जहाँ शहीदो का रक्त गिरता वही से उगता है हर सवेरा,
जहाँ गलाता है देह दीपक वहाँ न आता है फिर अँधेरा।
है क्रुद्ध होता जहाँ पसीना वही से इतिहास का जनम है,
है गुनगुनाती जहाँ जवानी वही सृजन डालता है डेरा॥

गरीवी जो बनके रोज ईंधन खुद सर्द चूल्हो मे जल रही है,
उदासी जो चक्कियो के पाटो मे रोज पिस-पिस के पल रही है,
वे हाथ जो पाथते ही कडे वुढा गये वीस ही वरस मे,
वह लाठी जो वेसहारे सडको पै डगमगाती-सी चल रही है,

तुम उनके सपनो की हो अजता, तुम उनकी रातो के हो उजाले,
तुम उनकी गोदी के हो कन्हैया, तुम उनकी पूजा के हो शिवाले॥
तुम उनके तुलसी, तुम उनके पुश्किन, तुम उनके गाधी, तुम उनके नेहरू,
तुम उनके गिरते हुए घरो मे हो एक मौसम वहार वाले॥

तुम उनकी आँखों को रोशनी दो, तुम उनके माथे मुकुट सजाओ,
तुम उनके आँगन मे मुसकराओ, तुम उनके जीवन में जगमगाओ ।
वे गीत बाँटो तो डबडबाता रहे किसी आंख का न काजल,
गगन को नीचे उतार लाओ, धरा को ऊपर उछाल जाओ ।।

स्वर्ग-दूत से

9684
22-8-87

50

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूमके गा लूँ तो चलूँ।

भटकी-भटकी है नजर, गहरी-गहरी है निशा,
उलझी-उलझी है डगर, धुंधली-धुंधली है दिशा,
तारे खामोश खड़े, द्वारे बेहोश पड़े
सहमी-सहमी है किरन, बहकी-बहकी है उषा,
गीत बदनाम न हो, जिन्दगी शाम न हो
बुझते दीपों को जरा सूर्य बना लूँ तो चलूँ।

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूमके गा लूँ तो चलूँ।

कौन बीमार औ' टूटी पड़ी
रूठी पायल ने न बजने की
मत्रके सब चुप न कही गूंज,
और यह जब कि आज
कही न नींद यह ग
सोई बगिया मे जरा

ऐसी क्या बात है चलता
गीत एक और जरा झूमके ग।

बाद मेरे जो यहाँ और हैं गा
स्वर की थपकी से पहाड़ो को सुल।
उजाड़ बागो वियाबान-सुनसान।
छद की गध से फूलो की।
उनके पाँवो के फफोले न
उनकी राहा के जरा शूल हट

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी न
गीत एक और जरा झूमके गा लू रा।

ये जो सूरज सा गरम भाल यहे घूम रहे,
ये जो तूफान मे किश्ती को लिये घूम रहे,
भरे भादो की घुमड़ती हुई बदली की तर
ये जो चट्टान से टकराते हुए झूम
नये इतिहास की बाँहों का सहारा है
तख्ते-ताऊस॰ पर जब उनको बिठा लूँ ता

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ।

यह लजाती हुई कलियों की शराबी चितवन
गीत गाती हुई पायल की यह नटखट रुनझुन
यह कुयें-ताल, यह पनघट, यह त्रिवेणी, संगम
यह भुवन-भूमि अयोध्या, यह विकल वृन्दावन,
क्या पता स्वर्ग में फिर इनका दरस हो कि न हो,
धूल धरती की ज़रा सर पै चढा लूँ तो चलूँ।

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ।

कैसे चल दूँ अभी कुछ और यहाँ मौसम है
होने वाली है सुबह पर न सियाही कम है
भूख-बेकारी-गरीबी की घनी छाया में
हर जुबां बन्द है, हर एक नज़र पुरनम है,
तन का कुछ ताप घटे, मन का कुछ पाप कटे,
दुखी इंसान के आँसू में नहा लूँ तो चलूँ।

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ अभी चलता हूँ
गीत एक और ज़रा झूमके गा लूँ तो चलूँ।

* इस गीत की प्रेरणा के लिए कवि एक उर्दू कविता का आभारी है।



51

[Translated from orignal Hindi]

What is this life ? a wreathe of fancies dear
That weaves the Time to offer at shrine of death,
Each day is petal flower is each year
Each knot of the thread is every passing breath

The colours black and white are night and day,
The shades serene are autumn and the spring
The tears dripping are dew-drops of pure ray
And hour that comes and goes is bird on wing

The fragrance fine are virgin longings sweet
The dark-eyed dreams are bees humming around,
The handsome hopes hopes are pollens pure and neat
And nectar is the love of heart profound

O man then why to weep when life is lost
Death s nothing but the wreathe completing knot

Rise up ! Rise up ! O Love incarnate glory of Everest

The time is sick and groans with pain,
Blood stalks the land of flowers
Earth is raped by bombs and tanks
And hatred writes the history of man

Love weeps on the drunken graves,
Truth and Beauty kindnapped in daylight,
Faith is stifled ere it is born
Peace is hanged on the gallows of swords,
Hunger eats the very flesh of life,
Unemployment employs the suicide,

Morals are preached by immoral lips
And Justice awaits whips—golden whips
behind silver bars

The swift current of reason in desert is lost,
A dagger s cut religion has made its goal
Art Literature all wander as homeless dogs,
And politics play the game of rogues

Wake up ! O Wake up ! the Saviour of Truth
Lest oceans may surge up and swallow the globe,
Rise up ! Rise up ! O Love incarnate-glory of Everest,
Or passions make the beast of man

53

At the day s end when commenced proceedings of the Supreme Court, the Chief Prosecutor unfolding the scroll of allegations before the President of the Immortals and pointing towards a man loudly proclaimed

That man ! My Lord ! who stands in tattered finery in the forefront row of culprits with head held up high and pale wrinkled face is the chief accused of the day He has committed, besides many other, such a grea crime against the law of *this* court that none could dare till today

He was born a poet and was the master of the innumer able vast treasures of the Universe All the secrets of Nature were open to him He had everlasting store of stars dreams, sighs, songs cadence refrains, music, art in the hut of his fancy Yet he sold all his art, all his poetry all his literature, all his prestige and honour for a few pieces of gold I therefore impeach him in the name of literature of all the ages, I impeach him in the name of poets and poetry of all the races, I impeach him in the name of Nature in the name of Art in the name of Beauty in the name of Love in the name of this great court of Justice whose faith he has betrayed for nothing and lastly in the name of mankind, in the name of his own sweet name and in the name of his motherland whose graceful mortal ity he has disgraced by his immortal fame

For a moment there was full in the assembly when break*ing the silence of the court the judge murmured on his seat*—

Was it so ?

Yes, Your honour —slowly said the poet



नीरज

'नीरज' जी से हिन्दी-संसार अच्छी तरह परिचित है किन्तु फिर भी उनका काव्यमय व्यक्तित्व आज सबसे अधिक विवादास्पद है। जन-समाज की दृष्टि में वह मानव प्रेम के अन्यतम गायक हैं, भदन्त आनन्द कौसल्यायन के शब्दों में उनमें हिन्दी का 'अश्वघोष' बनने की क्षमता है, दिनकर जी के कथनानुसार वह 'हिन्दी की वीणा' हैं, अन्य भाषा भाषियों के विचार से वह 'सन्त कवि' हैं और कुछ आलोचकों के मत से वह 'निराश मृत्युवादी' हैं। कुछ भी हो, यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान समय में वह सर्वाधिक लोकप्रिय और लाडले कवि हैं, और उन्होंने अपनी मर्मस्पर्शिनी काव्यानुभूति तथा सहज-सरल भाषा द्वारा हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया है और बच्चन जी के बाद, कवियों की नयी पीढ़ी को सर्वाधिक प्रभावित किया है। आज अनेक गीतकारों के कंठ में उन्हीं के स्वर की अनुगूंज है और कविता के विभिन्न रूपों में उन्हीं की भाषा और भावना लिखी और बोली जा रही है।